

सेठिया जेनग्रन्थमाला पुण्य नं० ३९

श्री गुलाब-वीर-ग्रन्थमाला-रत्नद्वितीय

कर्तव्यकौमुदी-द्वितीयग्रन्थ

हिन्दी-भाषानुवाद सहित



रचयिता-

लीबडी-गम्प्रदायकः शतायधानी
पं० मुनि-श्रीरत्नचन्द्रजी स्वामी ।



प्रकाशक—

भैरोंदान जेठमल सेठिया

वीकानेर (राजपूताना)

सेठिया-जेन प्रयाग

(वीकानेर) फी धोर से भेट

प्रथमावृत्ति	}	धोर न० २४-२१	}	मूल्य पाच आने,
३००० प्रति		विषम न० १९८१		आटपेपर पपी
		ई० १९२२		जिल्द आठआने

“घसत मुद्रणालय’ मा चीमनलाल ईश्वरलाल म्हेताप छाप्यु
सीवील इस्पीतालनी सामे—अमदावाद

श्रीमान् अगरचंद भैरोदान सेठिया की जैनपारमार्थिक सस्थाएँ

वोकानेर.

निम्न लिखित सस्थाएँ मूल धन (Capital ध्रीय फण्ड)का जो २००००) चौस हजार रुपया वार्षिक व्याज तथा मकानभाडा आताहै उससे चल रही हैं। मूल धनके सिवा मस्याओंके लिए एक विशाल भवन (बिल्डिंग) भी दिया गया है। इन समय कार्यक्षेत्र विस्तृत करदेनेसे खर्चभी बढ़गया है, श्रीमान् सेठ साहबने उसकी पूर्ति करने की उत्साह पूर्वक उदारता दिखाई है। मूल धन (ध्रीय फण्ड) और बिल्डिंगके नस्टी आपके सुचिनीत उत्साही ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत जेठमलजी कर दिये गये हैं।

निम्न लिखित सस्थाओंमें पण्डित अध्यापक (मास्टर) अध्यापिका लेखक तथा अन्य कर्मचारी सब मिलकर वर्तमानमें २५ जैन और १० अजैन कुल ३५ व्यक्ति कार्य कर रहे हैं।

विद्यालय (स्थापित विक्रम स. १९७०).

इन विद्यालयमें छात्रोंको हिन्दी, अंग्रेजी, महाजनी (घाणिका) धर्मशास्त्र मस्कृत व्याकरण न्याय साहित्य अलङ्कार छन्दशास्त्र प्राकृतआदिका अध्ययन कराया जाता है, तथा कलकत्ता गवर्नमेन्ट मस्कृत कालेज आदिकी परीक्षा भी दिलाई जाती है। प्रिन्टिंग प्रेस (छापखाना) का तथा व्यापार लाइन का काम भी सीखनेकी इच्छा

घालोंको सिखाया जाता है। मेट्रिक या इससे अधिक अग्रेजीको योग्यता वाले जन्म विद्यार्थी यदि धार्मिक मसूत प्राकृतका अध्ययन करना चाहते हों ता उनके लिये, और अनाथ निराधार जैन बालकोंके लिए रहनेको स्थान भोजन, यस्त्र आदिका प्रबंध कियाजाता है।

श्राविका-पाठशाला

इस पाठशालामें श्राविकाओंका हिन्दी धार्मिक नैतिक व्यावहारिक शिक्षा तथा सोनापिरोना कसीदा करना गोटा त्रिनारी बनाना आदि सिखाया जाता है।

ग्रन्थालय (स्थापित विक्रम स १९७८)

इसमें हस्तलिखित-जैनशास्त्र मसूत प्राकृत, पाली, हिन्दी, गुजराती, अगरेजी पुस्तकोंका संग्रह उद्योग से कियाजाता है, कई भाषिक तथा साप्ताहिक समाचारपत्र भगाये जाते हैं, जो वाचकोंको विनाफीम वाचनेको मिलते ह। इस ग्रन्थालयमें विद्वान् जैनसूत्र सिद्धान्तोंका मशोधन तथा हिन्दी अनुवाद करते हैं। लेखकोंसे सुत्र सिद्धान्तोंकी प्रतियाँ लिखाई जाती हैं, तथा प्राचीन प्रतियोंसे मिलान किया जाता है। इस ग्रन्थालयसे जैन धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ प्रकाशित हाते हैं जिनका मूल्य लागतसे भी कम रक्खा जाता है, तथा कुछ पुस्तकें अमूल्य भी वितरण की जाती हैं। इस ग्रन्थालयसे दीक्षाभिलाषियोंको स्वाध्याय तथा कण्ठस्थ करनेके लिए दशवेकालिन, उत्तराध्ययन, नमिपवज्जा महाधीर जिनस्तुति (पुच्छिमुण) आदि ग्रन्थालयसे प्रकाशित हुई पुस्तकें भगानेसे नाम पता पुरा स्पष्ट अक्षरोंमें आनेपर एक एक प्रति भेंट भेजी जाती है। इस स्थानमें

दीक्षाभिलाषी (घैरागी भाई और घैरागिन बाई)को दीक्षा का समय निश्चित होनेपर षष्ठ पात्र रजोहरण आदि दीक्षाये उपकरण और हस्तलिखित मूलपाठ-दशशेकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी, सुमधिपाक आदि सहायन की गई प्रतियाँ, तथा कई एक ग्रन्थालयसे छपी हुई पुस्तकें विना मूल्य मिलती हैं। इस सत्याद्वारा-जेन लायब्रेरी (जेन पुस्तकालय) सभा, मण्डल, ज्ञानमण्डार पौषशाला उपाश्रय आदि ऐसे स्थानों में जहा जैनधर्मकी पुस्तकोंका संग्रह होता हो, वहापर इन ग्रन्थालयसे निकाली हुई पुस्तकें मगानेसे जो विनामूल्यको उपलब्ध पुस्तकें हैं उनमेंसे एक एक प्रति अमूल्य और मूल्यवाली पुस्तकें आधे मूल्यसे ही भी द्वारा भेजी जाती हैं। इन सत्यासे जहापर जैन धर्म की पढाई होती है ऐसे विद्यालय अनायालय पाठशाला श्राविकाग्रम आदि सत्याओं की ग्रन्थालयसे प्रतिद्ध हुई सामायिक तथा प्रतिक्रमणतूत्र की पुस्तकें मगानेपर आधी कीमतसे ही भी द्वारा भेजी जाती हैं, और इनके साथ अध्यापक तथा अध्यापिकाओं के लिए एक एक प्रति भेंट भेजी जाती है।

प्रिक्रम सं० १९८१ }
पौष शुक्ल ३

निवेदक-
व्याकरणाचार्य न्यायतीर्थ—
प० रमानाथ जैन शास्त्री
सेठिया जैनग्रन्थालय
चोकानेर, (राजपूताना)

उपोद्घात व निवेदन.

नसारक प्राणीमात्रमें मानव जीवन सर्वाथ माना गया है, क्योंकि मनुष्य में ऐसी स्वाभाविकशक्ति विद्यमान है कि यदि वह अपने कर्तव्यका पूर्णतया पालन करता रहे तो शनैः शनैः अपने कुटुम्बका अपनी जातिको अपने दृष्टका अभ्युत्थान कर सकता है, तथा आमाकी शक्तिका पुन विकास दानेपर सम्पूर्ण विश्वका उद्धार करनेमें समर्थ हो सकता है। उन्नी सर्वाथ-साधक कर्तव्यका दिखानेवाले इस कर्तव्यकीमुदीतामय ग्रन्थका लिखी अनुवाद करवाकर प्रकाशन करता हुआ मैं अपने जीवनकी कृतार्थ समझता हूँ। ग्रन्थका मातृ य इसका साधक नामसे विदित होता है। इस ग्रन्थका कर्ता श्रीवैद्यी-संप्रदायके श्री श्री १००८ शताब्धानी ५० रत्नचन्द्रजी महाराज हैं। आपका जन्म स० १९३६ वैशाख शुक्ल १२थ दिन घीसाओसयश (घीसा आसयात्र जाति) में हुआ तथा पूज्य पादश्री १००८ मुनिश्री गुलाबचन्द्रजी स्वामीका पास १९५३ ज्येष्ठ शुक्ल ३थे दिन पवित्र दोभा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करनेके बाद आपने श्रीघड़ी सस्कृतका अध्ययन प्रारम्भ करदिया और निम्नातचन्द्रिका निम्नातकीमुदी, तत्त्ववाचिनी, मनारमा, पंचमहाकाण्ड अल्फारमा हिन्दू, नाटक आदिका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, न्यायविषयका तर्कसंग्रहसे लेकर जगदीशगदाधरके याध-अनुमिति ग्रन्थ तक भली भाँति अध्ययन किया। पश्चात् सार्वदर्शन, पातञ्जलदर्शन प्राकृतभाषा आदिका ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार अध्ययन समाप्त होनेपर स० १९६६ से व्याख्यान

देना और अध्यापन करना प्रारम्भ कर दिया, और भाय-पूर्ण तात्विक गुजराती, संस्कृत, प्राकृत तथा अर्धमागधी भाषामें अनेक ग्रंथ रचकर जन-समाजका बड़ा भारी उपकार किया है। स० १९८० में अहमदाबादके चातुर्मानमें इस कार्यकौमुदी द्वितीय ग्रन्थकी रचना की, तथा स० १९८१ में बडवाण केम्पके चातुर्मानमें जैन-निदान्तकौमुदी (अर्धमागधी-व्याकरण), प्राकृत पाठावलि, अर्धमागधी-धातुरूपमग्रह आर प्राकृतधातुमग्रह इन चार ग्रन्थोंकी रचना की और षाठियागढ देशके उमरडा नामक ग्राममें समाप्ति की। ज्ञान-वृद्धिके लिये इस सस्था (सेठिया-जैनग्रन्थालय) को देनेकी उदारता को है जोकि इसी सेठिया जैन ग्रन्थमालामें प्रकाशित होनेवाले हैं। वतमानमें आप चार मुनीश्वराने साथ (पाचठाणे) विचर रहे हैं। महाराजश्रीने इस ग्रन्थकी रचना करके सम्पूर्ण जनताका महान् उपकार किया है। यह अनुपम ग्रन्थ जैन जैनेतर, स्त्री, पुरुष, बाल, युवा, वृद्ध सबको लाभदायक है। हमें पूर्ण विश्वास है कि विद्वत्समाजमें इसका पूर्ण आदर होगा। इस कर्तव्यकौमुदी नामक ग्रन्थके द्वा भाग हैं। पहला भाग गुजराती तथा हिन्दो भाषामें विग्रहण सहित अनुवाद पहले प्रकाशित हो चुका है, गृहस्थ-कार्यका प्रतिपादक यह प्रथमभाग तीन खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम खण्डमें कर्तव्य के लक्षण, अधिकारी, काल, क्षेत्र, व्यवस्था आदि दिग्गते हुए ग्रन्थकार महोदयने कर्तव्यके बाधक-प्रौध, मात्स्य-निन्दा दुर्भाषण आदिने परिहारका तथा प्रतिज्ञानिर्गहका विवेचन गभीरता पूर्वक किया है। द्वितीय खण्डमें गभावस्था में बालकके मस्कारकी उत्पत्ति सन्तानपर माताकी शिक्षा का प्रभाव, गृह शिक्षा, ब्रह्मचर्य, आरोग्यके नियम, आज्ञा

पालन सहाध्यायी पालकोंके साथ सहर्तन इत्यादि विद्या
 थियोंके कर्तव्य तथा १ घतक्रीडा, २ मासाहार, ३ सुरा
 पान ४ वेद्यागमन, ५ परस्त्री लाम्पटव, ६ चोरी, ७
 शिकार, आदि छोट घडे व्यवसनोंका निषेध विद्वत्ता पूर्वक
 किया है। तीमरे खंडमें सामु समुद्र, पतिआदिधे साथ
 स्त्रीका कर्तव्य विधयाकर्णव्य, कन्याविप्रय-निषेध वृतज्ञता,
 परोपकार, उदारता, सहनशीलता इत्यादि मानव धर्मका
 सार गमित विवेचन उड़ी गहरी दृष्टिसे कियागया है।
 कर्णव्यकीमुदीका द्वितीय भाग (प्रथ) आपके हस्तगत है।
 यह प्रथ दो खण्डोंमें विभक्त है, पहले खण्डमें गृहस्थका
 कर्णव्य और दूसरेमें माधुका कर्णव्य उतम शैलीसे
 विवेचन किया गया है। प्रथम खण्डमें सेवाधर्म, भेत्री
 प्रमाद गान्ध्या माध्यस्थ ग्रामीणशाला, विद्यालय छात्रा
 श्रम शिक्षापद्धति चिकित्सालय, अपागसेवा विधवा
 श्रम पशुगर्भणशाला, (पिंजरापोल) आदिकी पूर्ण आध
 श्यक्ता दिग्वाते हुए महाराजश्रीने वृद्धविवाह विधवा
 विवाहका मनुक्तिक निषेध और स्वदेशसेवा आदि गृहस्थ
 के मुख्य मुख्य कर्णव्यका हृदयग्राही नर्मस्पर्शी वर्णन
 अनुपम शैलीसे कियाहै तथा द्वितीय खण्डमें मनुधर्म
 (स-यासोंके कर्णव्य) का विवेचन नूतन प्रणालीसे उत्तम
 प्रकार किया है। इस ग्रंथकी पढ़तेही मनुष्य मात्रके हृदय
 में कर्णव्य-पालनके भाव जागृत हो जाते ह। ऐहलौकिक
 व पारलौकिक सुख प्राप्त करनेकी आकांक्षा रखनेवालोंकी
 त-मार्ग-प्रदर्शक इस अनुपम ग्रंथका अधलोचन करना
 परमावश्यक है तथा त्रि-यस्त विषय स्वदेश सेवा अर्हि
 सा आदिका अनुशीलन तथा पालन कर मानवजीवनकी
 समुन्नत बनाना चाहिये। कदातक कदा जाय आधुनिक

आचरणीय कर्तव्यका प्रतिपादक यह ग्रन्थ अपने ढंगका एकही है। महाराजश्रीने समस्त जनताकी हितकामनासे इसको सरल भाषामें बनाया है। हमारी आन्तरिक भावना है कि मनुष्य मात्र इससे लाभ उठावें। हमारी इच्छा पुस्तकका मूल्य रग्नेकी नहीं थी, किन्तु कई सज्जनोंके आग्रह करनेपर तथा विनामूल्यकी पुस्तकका योग्य आदर न देखकर लागतसेभी कम मूल्य रक्खा गया है। सा भी ज्ञान प्रचारमें ही लगेगा।

स्थान बीकानेर } निबंधक
स० १९८१ पो० शु० ३ } भैरादान जेठमल सेठिया

विषयानुक्रमिका

विषय	पृष्ठ
१ महलाचरण	१
२ प्रथम ग्रन्थका इस ग्रन्थमें साथ सम्बन्ध	२
३ तीसरी और चौथी अध्याये कर्तव्यका तारतम्य	३
प्रथमखण्ड.	
४ सम्यग्दर्शनका स्वरूप	४
देव गुरु और धर्मका उद्घरण	५
धर्मका माहात्म्य	५
धर्म का फल	६
५ सम्यक्चारित्र्य-व्रतका पालन	७
, अहिंसा व्रतका स्वरूप	७
, अहिंसा व्रतकी पालना	
६ नित्यव्रत	
७ अचौर्यव्रत	

८	ब्रह्मचर्यव्रत	९
	शीलव्रतकी आवश्यकता	१०
	इन्द्रिय पराधीनता का दुःख	११
	ब्रह्मचर्य पालनेकी भर्षादा	११
९	परिग्रह परिमाणव्रत	१२
	तृष्णाका निराध	१३
१०	दिशा और भोगोपभोग परिमाणव्रत	१३
११	अनर्थदण्ड त्यागव्रत	१४
१२	सामायिकव्रत	१४
	सामायिकव्रतकी आवश्यकता	१५
१३	देशांतराशिक्ष व्रत	१५
१४	पौषधव्रत	१६
१५	अतिथिसत्कार व्रत	१७
१६	संवाधम—वृथका पगल जीवन	१८
	उत्तम यत्नसे परापकारके लिए होती हैं	१९
	प्राणिप्राका परापकार वृत्ति	२०
	संवाधमसे प्रवेश करनेके द्वार	२०
१७	मैत्री भाषना—बैरका त्याग	२१
	मन जीयाके साथ भ्रातृभाव	२२
	भ्रमा की भिक्षा	२२
	मिश्रता का फल	२३
	भेदताकी घातक प्रकृतिका परित्याग	२३
	धमभेदसे मिश्रताका घात नहीं होता	२४
	ईर्ष्या और इनसे सदा दुःख	२५
१८	प्रमाद भाषना—दुष्टके को सुगी देखकर	
	प्रसन्न होना	२६

१९	करुणा भावना--करुणाका फल	२८
	करुणा विना सय निष्फल	२९
	पुण्यवृक्षको सींचनेके लिए करुणाकी आवश्यकता	३०
	करुणापात्र जीव	३१
२०	माध्यस्थ्य भावना—महानशीलता	३१
	पापी मनुष्यका भी तिरस्कार नहीं करना	३१
	पापियोंका नाश न करके पापका ही नाश करना	३१
	शान्तिपूर्णक मध्यस्थ्य भावने विजय	३२
२१	मनुष्य सेवा—अनाथ बालकोंकी सेवा	३३
	बालसेवा प्रति साधारण मनुष्योंका कर्तव्य	३४
	भिन्न २ प्रकारके मनुष्योंकी भिन्न २ सेवा	३५
२२	गावमें पाठशाला	३६
२३	शूद्रशिक्षा	३७
२४	गरीबोंकी पुस्तकालिका सहायता	३७
२५	छात्राश्रम (बोर्डिंग हाउस)	३८
२६	धार्मिक शिक्षा	३९
२७	परीक्षा और पारितोषिक	४२
२८	धार्मिक शिक्षाके लिए पुस्तकें	४३
२९	रोगियोंकी सेवा	४३
३०	आरोग्य सेवा	४४
३१	औषधालय	४४
३२	अपाहोंकी सेवा	४५
३३	निरुद्यमत्तरूप रोगका निवारण	४६
३४	निरुद्यमताके कारणोंकी निवृत्ति	४७
३५	निरुद्यमियों को उद्यममें लगाना	

३६	किसानोंकी सेवा	४८
३७	श्रमजीवियों की सेवा	४९
३८	मजूरा का सद्गताव का शिक्षा	४९
३९	विधवाओंकी सेवा	५०
४०	विधवाओंकी आजीविका का प्रबंध	५१
४१	विधवाओं पर अकुशल की मर्यादा	५१
४२	विधवाश्रम की स्थापना	५२
४३	वृद्धसेवा	५३
४४	वृद्धोंके अनुकूल आचरण	५४
४५	वृद्धोंका समाधि भरण	५५
४६	पशुरक्षा	५५
४७	पशुपक्षियोंकी हिंसा का निषेध	५६
४८	पशुरक्षाके नियम	५७
४९	घरके और बड़े पशुओंकी रक्षा	५८
५०	पिंजरापोल की व्यवस्था	५८
५१	जातिके अन्तगत भेदका परिहार	५९
५२	जातिके नेताओं की व्यवस्था	६०
५३	जातिके फलक का परिहार	६०
५४	कुरूटि का निराकरण	६१
५५	वृद्धविवाह आदि कुप्रथाओं का परिहार	६२
५६	स्वदेश सेवा	६२
५७	स्वदेशका हितचिन्तन	६३
५८	स्वदेशके आचारकी पालना	६४
५९	स्वदेशी वस्तुका उपयोग	६४
६०	देश के उपद्रवका नाश	६५
६१	स्वचक्र और परचक्रसे देश की रक्षा	६५
६२	अधिकारियों के उपद्रव का निराकरण	६६

६३	आपत्ति के समय सेवा	६६
	द्वितीय खण्ड.	
१	जगत्सेवामें आत्मसेवा	६७
२	मसार को सेवा	६८
३	विश्वप्रेम	६८
४	सत्रसे उत्तम विश्वप्रेमी	६९
५	अत्मदृष्टिसे जगत्का निरीक्षण	७०
६	तीन प्रकारका धैराग्य	७०
७	तृतीय धैराग्यके दो भेद	७१
८	धैराग्य का अभ्यास	७२
९	शास्त्र का अध्ययन	७२
१०	गुरुकृपा	७३
११	धैराग्य का परिपाक	७४
१२	धैराग्य की परीक्षा	७४
१३	शिष्यता लक्षण	७५
१४	गुरुता लक्षण	७५
१५	दाक्षाभिलाषीका कुटुम्भियों की आशा	७६
१६	आशा न मिलने पर भाव मयम	७७
१७	धैराग्य का निश्चय हाने पर दीक्षा	७७
१८	गृहस्य वेप और वृद्धारका त्याग	७८
१९	साधुका वेप	७९
२०	किस लिए वेपका परिवर्तन	८०
२१	अहिंसा और सत्यकी प्रतिज्ञा	८०
२२	अचौर्य और ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा	८१
२३	परिग्रह त्यागकी प्रतिज्ञा	८२
२४	क्रोध मान त्यागकी प्रतिज्ञा	८२
२५	माया लोभ रागद्वेष कर्ह और दोषारोपण के	

३६	किसानोंकी सेवा	४८
३७	धमजीवियाँ की सेवा	४९
३८	मजूरों को सद्गर्ताथ का शिक्षा	४९
३९	विधवाओंकी सेवा	५०
४०	विधवाओंकी आजीविका का प्रबंध	५१
४१	विधवाओं पर अकुश की मर्यादा	५१
४२	विधवाश्रम की स्थापना	५२
४३	वृद्धसेवा	५३
४४	वृद्धोंके अनुकूल आचरण	५४
४५	वृद्धोंका समाधि मरण	५५
४६	पशुरक्षा	५५
४७	पशुपशुओंकी हिंसाका निषेध	५६
४८	पशुरक्षाके नियम	५७
४९	घरूँचे ओर वृद्धे पशुओंकी रक्षा	५८
५०	पिजरापोल की व्यवस्था	५८
५१	जातिके अन्तगत भेदका परिहार	५९
५२	जातिके नेताओं की व्यवस्था	६०
५३	जातिके फलकू का परिहार	६०
५४	वृद्धिका निराकरण	६१
५५	वृद्धविवाह आदि कुप्रथाओं का परिहार	६२
५६	स्वदेश सेवा	६२
५७	स्वदेशका हितचिन्तन	६३
५८	स्वदेशके आचारकी पालना	६४
५९	स्वदेशी वस्तुका उपयोग	६४
६०	देश के उपद्रवका नाश	६५
६१	स्वयं और परचक्रसे देश की रक्षा	६५
६२	अधिकारियों के उपद्रव का निराकरण	६६

वाधुओं की दिनचर्या	१०२
विश्वसुसमाज मर्यादा—आचार्य और उपाध्याय	१०५
आचार्यपद की योग्यता	१०६
आचार्य का कर्तव्य	१०७
उपाध्याय का कर्तव्य	१०८
तपश्चर्या—वाह्यतप	१०८
आभ्यन्तर तप	११२
धैर्यावृत्त्य	११३
स्वाध्याय के भेद	११३
ज्ञान के आठ आचार	११४
स्वाध्याय की सिद्धि	११५
चित्त के आठ दोष	११६
आसनों के भेद	११७
प्राण और मन का सम्बन्ध	११८
प्राणायाम का पहला भेद रेचक	११८
पूरक और कुम्भक	११९
प्राणायामका फल	११९
भाव प्राणायाम	१२०
प्रत्याहार	१२०
धारणा	१२१
ध्यान का लक्षण	१२२
ध्यान की आवश्यकता	१२२
ध्यानके स्थान	१२३
1. की स्थिति	१२४
विचय और अपाय विचय	१२४
विचय और सस्थान विचय	१२५
के आलम्बन और भावना	१२६

	त्यागकी प्रतिज्ञा	८३
२६	चुगली आदि पात्र पापांशु त्यागकी प्रतिज्ञा	८३
२७	अठारह पापांशु त्यागकी प्रतिज्ञा	८४
२८	सगम बीजकी उत्पत्ति	८५
२९	ईशानमिति—गमनविधि	८५
३०	विधिरहित गमन करनेस उपपन्न हुए दोष	८६
३१	भाषासमिति (बोलन) में यतनाचार	८६
३२	कैसी भाषा बोलनी चाहिये	८७
३३	अयोग्य भाषा का त्याग	८८
३४	पपणासमिति (भिन्ना)	८८
३५	भिक्षाकी विधि	८९
३६	रसगृद्धिका निषेध	९०
३७	आहार लेनेके छह कारण	९१
३८	सहचारियों में आहारादिका समान विभाग	९१
३९	आहारादिका समझ न करना	९२
४०	घसादि लेने की विधि	९३
४१	स्थानकी पपणाविधि	९३
४२	उपाधयमें बिना कारण साधु साध्वियों के गमन का निषेध	९४
४३	साधु साध्वियों के एक जगह ठहरनेकी मर्यादा	९४
४४	प्रतिबन्ध रहित विहार	९५
४५	साधुओं का पैदल विहार	९६
४६	बस्त्रादिके उठाने करने की विधि	९६
४७	बस्त्रादिके प्रतिलेखनकी क्रिया	९७
४८	मूँमि या पट्टे पर शयन	९७
४९	मल मूत्रादि त्यागने की विधि	९८
५०	शुधादि २२ परिपद	९९

५१	साधुओं की दिनचर्या	१०२
५२	साधुसमाज मर्यादा—आचार्य और उपाध्याय	१०५
	आचार्यपद की योग्यता	१०६
	आचार्य का कर्त्तव्य	१०७
	उपाध्याय का कर्त्तव्य	१०८
५३	तपश्चर्या—ब्राह्मतप	१०८
	आम्यन्तर तप	११२
	धियावृत्य	११३
	स्थाध्याय के भेद	११३
	ज्ञान के आठ आधार	११४
	स्थाध्याय की सिद्धि	११५
	चित्त के आठ दोष	११६
	आसनों के भेद	११७
	प्राण और मन का सम्बन्ध	११८
	प्राणायाम का पहला भेद रेचक	११८
	पूरक और कुम्भक	११९
	प्राणायामका फल	११९
	भाव प्राणायाम	१२०
	प्रत्याहार	१२०
	धारणा	१२१
	ध्यान का लक्षण	१२२
	ध्यान की आवश्यकता	१२२
	ध्यानके स्थान	१२३
	ध्यान की स्थिति	१२४
	आज्ञा विचय और अपाय विचय	१२४
	विपाक विचय और सस्थान वि	१२५
	धर्म के आलम्बन और	१२५

ई	ई	८०	१०
सकती	सकती	२१	३
स्थीयेजने	नजेजने	८१	११
इमलिय	इमत्रिये	२१	१०
मश्चित	मश्चित	२०	७
करना	करनी	८३	१९
वृद्धनामा	वृद्धनामा	८५	६
पशु(पक्षि)	पशुपति	२६	८
हो	हा	८७	१२
चाहिये	चाहिये	८७	१३
किन्तुत्तम	किन्तुत्तम	२९	१७
चाहिये	चाहिये	६०	३
जातिव	जातिरे	६२	६
का	का	६३	११
मधलमना	मधलमना	६३	२०
कुले	कुल	६४	१७
घनजाये	घनजाय	६६	८
ममयाचित	समयोचितं	६६	१६
११८	११४	६७	८
सुखेप्रा	मयप्रा	६८	१९
ममतामयीये	ममतामाभ्ये	६९	१९
वृद्धीतु	वृद्धीतु	७७	१६
तथा	था	८०	८

अर्द्धोत्ता	अर्द्धिमा	८०	१२
भयने	भयेन	८०	१६
गृह्णीया	गृह्णीया	८१	९
यच्चिदहो	यच्चिदहो	८१	९
मैथुन	मैथुन	८१	१०
किन्तु	तथा	८१	१७
मानुगा	मानुगा	८४	१०
चाहिय	चाहिये	८५	७
घोलने में	(घालने म	८६	१९
घोलना	घोलनी	८७	११
चाहिय	चाहिये	८८	५
घोल	घाले	८८	६
प्रात	प्रातहुष	९१	१८
का	के	९२	१६
साधियर्था	साधियर्था	९४	१९
माधुना	माधूना	९५	१८
काट	काट	९७	१९
लिय	लिये	१००	२
धृत्या	धृत्या	१००	७
आदिकी	आदिका	१००	१०
सुभीत	सुभीते	१००	१२
शाधुना	साधूना	१०१	१५
गर्भितेहै	गर्भितहै	१०२	२०

समस्त विश्व टपणमें देहके प्रातन्त्रिकी तरह स्पष्ट झटकता है, उस योतिकी में मन-वचन-और कायसे अपनी दृष्ट सिद्धिके लिये नम स्कार करना है ॥ १ ॥

पूर्वात्तरग्रन्थमन्वयः ।

पूर्वाद्धै वयसोर्द्धया. प्रथमयो-नीति समालोचिता,
सद्योऽय समयस्तृतीयवयस' कर्तव्यसदर्शने ।
विद्या येन समर्जिता धनमपि प्राप्त कुटुम्बोचित,
तेनापश्यतया परार्थनिरत कार्ये निज जीवनम् ॥ २ ॥

प्रथम ग्रन्थका इस ग्रन्थसे सम्बन्ध ।

भावार्थ— पहिली और दूसरी अवस्था में आचरण करने योग्य नीति अर्थान् कर्तव्य कर्मका विचार प्रथम भागमें किया गया है। अब तृतीय अवस्था में पालन करने योग्य कर्तव्यकर्म की व्याख्या करनेका अवसर प्राप्त है। जिस पुम्पने विद्या प्राप्त की तथा कुटुम्बपात्रन योग्य धन भी समस्त किया, उसे अब अपना जीवन परमार्थ में ही बिताना चाहिये ॥ २ ॥

तृतीयचतुर्थवयसो कर्तव्यतारतम्यम् ।

अभ्यासार्थमिदं चतुर्थवयसो नूनं तृतीय वयो,
यत्रत्तत्र च सर्वथा भवति तद्देशेन भाव्यं त्विह ।
प्रायस्तत्र महाप्रतानि विषययाग कुटुम्ब जगत्,
सा या यत्र लघुप्रतानि विरति स्मूला समाज कुलम् ॥३

तीसरी और चौथी अवस्था के कर्त्तव्यका तात्पर्य।

भावार्थ—तीसरी अवस्था, चौथी अवस्था के कर्त्तव्यका अर्थात् करनेके लिये है, क्योंकि चौथी अवस्था में जो कर्त्तव्य सर्वथा अर्थात् परिपूर्ण पात्रन कियाजाता है वह तीसरी अवस्था में एक देश अर्थात् परिमितरूप आचरण कियाजाता है, चतुर्थप्रयोग समस्त विषयों के त्याग सम्पूर्ण सत्कारको कुटुम्ब ममान मानकर महाव्रत धारण किया जाता है। तीसरी प्रथम स्थिति पापों से निवृत्त होकर समान को कुटुम्बसमान समझने पर अणुव्रतका साधन होता है ॥ ३ ॥



प्रथमखण्ड.

प्रथम परिच्छेद ।

सम्यग्दृष्टि ।

सम्यग्दृष्टिपिलोकित हि सरल सद्धर्मकृत्य भवेत्,
सम्यग्दृष्टिरुदाहृता जिनवरैस्तत्त्वार्थरचयात्मिका ।
सन्नेव भुगुर सुधर्म इति सत्तत्त्वत्रय कथ्यते,
ज्ञात्वा तत्परमार्थत कुरु रुचिं तत्त्वत्रये निर्मले ॥४॥

सम्यग्दशानका स्वरूप ।

भावार्थ—सम्यग्दशानपूर्वक क्रियागया समस्त जाचरण सम्यक्
चारित्ररूप होता है, जिनेद्र भगवानने तत्त्वश्रद्धान को सम्यग्दर्शन
ब्रह्म ह बीतरागदेव, परिग्रहहित गुरु आर दयामय धर्म ये तान्
सम्यक्तरूप ह इन तीन निमलतत्त्वो का वास्तविक स्वरूप जानक
थना करनी चाहिये ॥ ४ ॥

दशगुरुधर्मलक्षणम् ।

देव कर्मचतुष्टयक्षयकर सद्धर्मसस्थापको,
रागद्वेषविघातकस्त्रिजगता चेतश्चमत्कारक ।
निर्ग्रन्थ समदृग् महाप्रतपपरिश्वितैकनिष्ठो गुरु-
धर्म क्षान्तिदयादिसद्गुणमयो रत्नत्रयप्रोतक ॥५॥

देव गुरु और धर्मका लक्षण ।

भावार्थ—रागद्वेष का सर्वथा क्षय करनेवाला अर्थात् वीतगग, ज्ञानारण आदि चार घातीकर्मका नाश करनेवाला अर्थात् सर्वज्ञ और सच धर्मका प्रवर्त्तक अर्थात् हितोपदेशी, एव अतिक्रिक आमप्रभासमे तीनलोक के जीवोंके चित्तमें चमकार उत्पन्न करनेवाला सत्यदेव है । चित्तको वशमें रखनेवाला अर्थात् जितेन्द्रिय सम्यग्दृष्टि महाव्रतधारण करनेवाला परिमहरहित सद्गुरु है । ओर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयका प्रकाश करनेवाला क्षमा दया आदि सद्गुणोंका भण्डार सत्यधर्म है ॥ ५ ॥

धर्ममाहात्म्यम् ।

धर्मः कल्पतरुर्भणिर्विपहरो रत्न च चिन्तामणि—

धर्मः कामदुघा सदा मुखरुरी सजीवनी चौपधिः ।

धर्मः कामघटश्च कल्पलताका विद्याकलाना खनिः ,

प्रेम्णैः परमेण पालय हृदो नोचेद्वृथा जीवनम् ॥६॥

धर्मका माहात्म्य ।

भावार्थ—धर्म वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, मणियों में विपहरण मणि और रत्नोंमें चिन्तामणिरत्न—समान है, पशुओं में कामधेनु आर वापधियों में सजीवनी औपधि समान सदा सुखदायी है, पार्यों में कामघट रत्नों में कल्पलता ओर विद्या तथा कलाओंकी खानि है इसलिये इसे परम प्रीति पूर्वक हृदयसे पालन करना चाहिये इसके बिना जीवन निष्फट है ॥ ६ ॥

धर्मफलम् ।

धर्मं कृन्तति दुःखमुन्नतसुखं दत्ते समायुद्धव,
दुष्कर्मणि रणाद्धि शक्तिमतुला प्रादुष्करोत्यात्मनः ।
ज्ञानज्योतिरपूर्वमर्पयति स स्वर्गापवर्गमद-
स्तन्नास्तीह महत्समुन्नतिपदं यन्नैव दद्यादयम् ॥५॥

धर्मका फल ।

भारार्थ—धर्म दु खोंका नाश करने शान्तिममाधिसे उपन
हुए अ युक्तम निराकुल सुखको देता ह, दुष्कर्मा को रोककर आमा म
अतुल सामर्थ्य उपन करता ह, ज्ञान-ज्योतिको बढाकर स्वर्ग और मोक्ष
को देता ह, इस लोकमें ऐसा को उच्छ्रित उन्नतिपद नहीं ह जो कि
धर्मसे प्राप्त नहीं हो सकता अथात् महत्समुन्नतिपद को देनेवाला एक
धर्म ही है ॥ ७ ॥

द्वितीय परिच्छेदः ।

सम्यक्चारित्र्ये

व्रतपालनम् ।

विज्ञाय व्रतलक्षणानि निरुद्धे शास्त्रार्थवेत्तुर्मुने-

*रानन्दो निखिलव्रतानि जगृहे भो ! स्वीकुरु त्व तथा ।

नाह-आनन्द-आन-दनामा श्रावका य श्रीमहावीर
प्रभुममीपे द्वादश व्रतानि जग्राह ।

भा० आन-दनामक श्रावकन महावीरस्वामी के समीप
चारह व्रत धारण किये ।

शक्तिर्नो यदि तावती प्रथमतः सोत्साहमङ्गीकुरु,
पञ्चाणुव्रतकानि धर्मविधिना सम्यक् समीपे गुरोः ॥८॥

सम्यक्चारित्र्य-प्रकरणमें व्रतका पालन।

भावार्थ—हे भव्य ! शब्दके रहस्यको जाननेवाले मुनिसे व्रतो के लक्षण भिन्न जानकर जिस प्रकार आनन्द नामके श्रावकने समस्त व्रतोंको अच्छी तरह समझकर धारण किया, उसी प्रकार तुम भी अङ्गीकार करो। यदि इस समय सम्पूर्ण व्रत ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं हे तो प्रथम गुरु के समीप पंच अणुव्रतको उसाह सहित विधि पूर्वक सम्यक्प्रकार अङ्गीकार करो ॥ ८ ॥

अहिंसाव्रतम्।

रक्षया यत्रपि सर्वजीवनिवहास्तत्रापि जीवास्त्रसा—

वैशिष्ट्येन हि तद्व्येऽतिदुरित तस्मान्निहन्यान्न तान् ।

नाप्यन्येन विघातयेत्कथमपि व्यर्थं न च स्थावरान् ,

हिंसात्याग-विधायक व्रतमिदं धर्मेच्छया पालयेत् ॥९॥

अहिंसाव्रत ।

भावार्थ—यद्यपि मनुष्यमात्रको ब्रह्म और स्थावर सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करनी चाहिये । तौभी चलने फिरनेवाले ब्रह्मजीवोंकी विशेष रूपसे रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि ब्रह्मजीवोंकी हिंसासे भयकर पाप उत्पन्न होता है । इसलिये इन जीवोंकी हिंसा कदापि स्वयं न करे, और न दूसरोंमें करवाये । विशेष कारण विना व्यर्थ स्थावर एकेन्द्रिय-जीवोंकी भी हिंसा न करे, इस हिंसा—यागरूप अहिंसाव्रतको धर्मबुद्धिसे पालन करना चाहिये ।

अहिंसाव्रतपालनम् ।

पापद्धि, पल्लाशन च मदिरापान निषिद्ध ततो-

हिंसातस्त्रसंदेहिना नियमतस्तत्र व्रतभ्रगनात् ।

यद्वस्तु त्रसहिंसया समजानि त्याज्य च तत्सर्पया,

स्याद्द्रव्यगतचिचारदोपरहित सेव्य तथाऽऽय व्रतम् ॥१०॥

अहिंसाव्रतकी पालना ।

भावार्थ—जिनार मासभक्षण और मदिरापान इन तीनोंके
शाखाम निषेध है, क्योंकि इनके सेवनसे त्रसजीवोंकी हिंसा अत्य
होती है, तथा अहिंसाव्रतका भंग होता है जो वस्तु त्रसजीवोंकी हिंसा
से उपन जाना है वह सर्वथा त्याग करने योग्य है अतः वधमयन
आदि अतिचार रहित इस प्रथम अहिंसाव्रतको पाठना चाहिये ॥१०॥

सयव्रतम् ।

हास्यक्रोधभयप्रलोभनभव न्यात् क्वचिन्नानृत,

नाप्यन्येन च भाषयेत् त्रिरुरणैरेतच्च सत्यव्रतम् ।

अभ्याग्यानपरापनादल्पन विश्वासघातरतया,

मिथ्यासाक्ष्यपरमतारणमिहा तर्भाव्यमेतद्विधम् ॥११॥

सन्यव्रत ।

भावार्थ—हास्य क्रोध भय और लोभके कारण मन वचन काय-
द्वारा कदापि अमय न बोल इसी तरह दूसरेसेभी न बुझावे तब
सयव्रतका पाठन होता है, तथा मिथ्यादोषारोपण परनिन्दा विश्वास-
घात झूठी-गवाही और दूसरेको ठगना ये भी अमलमे गर्हित है
सयव्रत पाठनेवाले को इन सब बातोंका त्याग करना चाहिये ॥११॥

अस्तेयव्रतम् ।

वस्तु स्यात् पतित पथे गृहगत कस्यापि चौर्येच्छया,
 ग्राह्य तन्न विनाऽऽज्ञया त्रिपरणैर्नाप्यन्यतो ग्राहयेत् ।
 ज्ञात्वा स्तेयधन कथञ्चिदपि तन्नादेयमप्यल्पक,
 साहाय्य न विधेयमस्य तदिद दत्तव्रत पालयेत् ॥१२॥

अचौर्यव्रत ।

भावार्थ—जिसीकी कोई वस्तु मार्गमें पड़ी हो अथवा घरमें
 खरपी हो स्वामीकी विना आज्ञा मन वचन आर कायद्वारा स्वयं न
 उठावे आर दूसरेसे भी न उठावावे, तथा जानबूझकर थोड़ीसी भी
 चारीकी वस्तु किसी तरह न ले आर चोरीके नाममें सहायता न करे
 तब सत्यव्रतका पूरीतह पालन होता है ॥ १२ ॥

ब्रह्मचर्यव्रतम् ।

स्यादाढ्यं यदि सर्वथा स्वमनसो ब्रह्मव्रतं दृढता,
 नोचेदेकनिजस्त्रियैर सतत सन्तोषवृत्तिररा ।
 सपर्कोऽपि परस्त्रिया न कुधिया कार्यः सदाचारिणा,
 स्त्रीपुंसोभयशीलरक्षकमिदं प्रोक्तं चतुर्थं व्रतम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मचर्यव्रत ।

भावार्थ—यदि मन स्थिर है तो पूर्ण ब्रह्मचर्य ग्रहण करनाही
 योग्य है, यदि इतनी दृढता न हो तो स्वदार सन्तोषवृत्ति और स्त्रीको
 स्वपति सतोषव्रत धारण करना श्रेष्ठ है, सदाचारी पुरुष दुष्टबुद्धिसे परस्त्री
 का स्पर्श भी न करे, आचार्योंने इस चतुर्थ ब्रह्मचर्यव्रतको स्त्री और
 पुरुष दोनों के शीत्र की रक्षा करनेवाग कहा है ॥ १३ ॥

शालग्राम्यावश्यता ।

व्यर्थ मानवजीवन मविभव शील विना शोभन,
 व्यर्था शीलगुण विना निपुणता शाले कलाया तथा ।
 व्यर्थ साधुपद च नायकपद शील पदा स्वगिटत,
 सेवाधर्मसमाप्तगे न सुलभ शीलप्रत चान्तरा ॥ १४ ॥
 पृथी संपुस्य विना न रुचिरा चन्द्र विना शर्वरी,
 लक्ष्मीर्दानगुण विना वनरता पुण्य फल वा विना ।
 आदित्येन विना दिन सुखकर पुत्र विना सत्पुत्र,
 धर्मोन्मैय तथा धृत धृतधरै शील विना शोभते ॥ १५ ॥

शालग्रामकी आवश्यकता ।

भावार्थ—जीवनका भूषण शीलगुण है, इसके विना अच्छयणी
 जीवन तथा शाल और कर्माकी निपुणता निष्क है, यदि प्रत्यन्त
 स्वगिटत ह तो साधुपद या नायकपद व्यर्थ है, शीलके विना सेवा
 धर्मका पान नहीं होसकता ॥ १४ ॥

जैसे संपुस्य विना पृथ्वी, चन्द्र विना रात्रि, दानगुण विना लक्ष्मी,
 फलपुत्र विना वनरता, सूर्य विना दिवस और सुखकरी पुत्र विना उत्तम-
 पुत्र शोभा नहीं देता, इसी तरह शीलविना शालवेताओं से धार्य
 कियागया धर्म भी शोभा नहीं देता ॥ १५ ॥

इन्द्रियपाशवश्यदुःखम् ।

एकैकेन्द्रियपाशवश्यनिहता मन्स्या पतङ्गा मृगा,
 दृश्यन्ते विछ दुर्दशासुपगता भृङ्गाश्च हन्स्यादय ।

ये पञ्चेन्द्रियकामभोगविवशा नक्तं दिव लम्पटा-

स्तेषा स्यादिह का दशा परभवे स्थान च लभ्य किमु ॥१६॥

इन्द्रियपराधीनता का दुःख ।

भावार्थ—जब कि केवल एक एक इन्द्रियकी पराधीनता के कारण हाथी मछली भौरा पतङ्ग और मृगादि प्राणियों की दुर्दशा देखी-जाती है, तो जो मनुष्य रातदिन पाचों इन्द्रियों के विषयभोग में लम्पट है उनकी इसलोक में क्या दशा होगी ? तथा परलोक में कौनसा स्थान मिलेगा ? ॥ १५ ॥

ब्रह्मचर्यव्रतपालनमयादा ।

नैव कापि दशाऽन्यथोपितमहो पश्येदयोग्येच्छया,

दृष्टा चेद्भगिनीयमास्ति जननीत्येव द्रुत भाव्यताम् ।

नो हास्य सममेतया न च कदाऽप्येकान्तसभापण,

न क्रीडा न सहासन न चलन कार्यं व्रतारोहणे ॥१७॥

सेव्य मादकवस्तु नो रसभृत भोज्यं न वा नित्यशो-

दयान्मोहकवस्त्रभूषणभर नो वाङ्मथुश्रूषणम् ।

कुर्यादिन्द्रियनिग्रहार्थमुचितं पर्वानुसारं तपो-

यत्रत् किं बहुनाऽस्य शुद्धिजनकं तत्तद्विधेयं पुनः ॥१८॥

ब्रह्मचर्यव्रत पालनेकी मयादा ।

भावार्थ—ब्रह्मचर्यव्रतधारी किसी जगह बुरी भावनासे परस्त्री पर दृष्टि न टाले तथा दृष्टिगोचर होनेपर यह मेरी माता है, बहिन है, ऐसा शीघ्र चिन्तन करे, तथा व्रतकी रक्षार्थ परस्त्रीके साथ हसी दिल्ली एकात्ममें वाचागप और कौतुकक्रीडा न करे, साथमें उठना

यत्कस्यापि न पापकर्मविषये कुर्यान्मनाच्चेरण-
मेतद्वक्ष्यमष्टमं त्रतमिदं कर्माघसरोधकम् ॥ २२ ॥

आठवा अनर्थदण्ड-यागव्रत ।

भावार्थ—धननाश अथवा पुत्रादिनी मृत्यु होनेपर चित्तमें
त्रिचित्त मात्र शोक न करना अपत्यान अनर्थदण्ड त्यागव्रत है । जीव
रक्षार्थे कायम प्रमाद नही करना, प्रमादचर्या अनर्थदण्डत्यागव्रत है
जीवहितकर अस्त्रशस्त्र आदिना सचय न करना, हिसक शस्त्रसचय
अनर्थदण्डत्यागव्रत है । तथा पापकर्म में दूसरेको प्रेरणा न करना पापोपदेश
अनर्थदण्डत्यागव्रत है । इसप्रकार यह आठवाँ अनर्थदण्डत्यागव्रत
निरर्थक नायसे उत्पन्न हुए कर्म-समूहको रोकनेवाला है ॥ २२ ॥

सामायिकव्रतम् ।

रागद्वेषकषायतो विषयता या जायते स्वात्मन-

स्तुरीकरणाय साम्यजनक सामायिकव्रतम् ।

कायोत्सर्गसमाधिशाल्मनन स्वाभ्यायजापश्रुती

स्वयन्त्वा न प्रियता च कार्यमपर घण्टामितेऽस्मिन् व्रते ॥ २३ ॥

नवमा सामायिकव्रतम् ।

भावार्थ—रागद्वेष आर कषायके कारण आत्ममें जो विचार
उत्पन्न होताहै उसको दृग्दूर समता भावको उत्पन्न करनेवाला सामा-
यिक नामका व्रत है, प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन एक या अधिक सामा-
यिक कर्मकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये । सामायिकका जघन्यकाल दोघडी
अर्थात् ४८ मिनट है, सामायिक के कालमें कायोत्सर्ग, ध्यान, आ या-

मिकशास्त्रका मनन, स्वाध्याय, जाप तथा शास्त्रश्रवणके सिवाय दूसरा सासारिक-कार्य नहीं करना चाहिये ॥ २३ ॥

सामायिकन्यायश्यकता ।

प्रातःप्रागशनात् प्रसन्नमनसाऽवश्यं विदध्यादल,

स्वच्छः शान्तनिषेत्तने प्रतिदिन सामायिक भावतः ।

त्यक्तव्या विप्रथा मनस्तनुवचोदोषाः समग्राः स्वतो-

नैर्मल्यं च भवेत्प्रथा परिणतैः स्थैर्यं च कार्यं तथा ॥२४॥

सामायिक व्रतकी आवश्यकता ।

भावार्थ—प्रतिदिन प्रातः का भोजन करनेसे पहिले शुद्ध होकर प्रसन्न मनसहित निरुपद्रव स्थानमें जाकर भावपूर्वक रूपसे कम एक सामायिक तो अवश्य ही करना चाहिये । सामायिक के फलमें भोजन, स्त्री, देश और राजसम्बन्धी चारों विप्रथाओं को तथा मन के दश, वचन के दश और त्राय के बारह दोषोंको दूरकर ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे आत्माकी निर्मलता और परिणामकी स्थिरता हो ॥ २४ ॥

देशायकाश्रयतम ।

पृष्ठे यद्विहिता दिशा परिमितिस्तत्रापि सक्षेपतो-

द्रव्यादेः परिमाणमादरधिया कृत्वाऽऽश्रयो रभ्यते ।

प्रोक्तं तदशमं व्रतं मुनिवरैर्-देशायकाशाभिधं,

पट्टकोद्रव्या प्रतिपालनीयमानिश्च कालं यथेष्टं पुनः ॥२५॥

देशायकाशिक्षव्रत ।

भावार्थ—छठे अङ्कतम जो दिशाओंकी मर्यादा की गई है उसमें भी सकोच करके आदरखुद्धिसे द्रव्य क्षेत्र का और भावका परि-

माण करनेमें सम्राश्रयको गेरनेवाग दसवाँ देशान्तराश्रित्रत उपन्न होता है जेमा मुनीश्वराने कहा है, इसको इच्छानुमार बह कोर्गमें नित्य पात्रन करना चाहिये ॥ २५ ॥

पौषध्वज्रतम् ।

त्यक्त्वा भूपणमाल्यमेकदिवस कृत्वोपवावस पर,
द्वित्या पापकृतिं गृहीतनियमस्तिष्ठेश्च धर्मस्थले ।
धर्मध्यानपरायणं शुभमतिस्तत्पौषधारण्य व्रत,
ग्राह्य पर्वदिनेषु दोष रहित पाल्य विशुद्ध्याऽऽत्मनः॥२६॥

पौषध्वज्रत ।

भावार्थ—साधारण ब्रह्म के सिवाय समस्त अलङ्कार पुष्पमात्र आदि का त्याग कर एक दिन अर्थात् २४ घंटे चउरिहास उपवास धारण करे तथा सब सामारिक णपत्र्या में निवृत्त हो नियम धारण कर धर्मस्थान में रहे और वहा परमधर्म ध्यान में लीन रह कर शुभ भावा में शत्रुद्विषम यतीत करे इसे पौषध्वज्रत कहते हैं, धार्मिक गृहस्थ को अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वदिनों में जामा की शुद्धि के लिये इस व्रत को अत्र य पात्रन करना चाहिये ॥ २६ ॥

अतिथिदानव्रतम् ।

ये सन्तोऽतिथयो गृहाङ्गणगतास्तेषां पुरस्कारतो—
योग्यान्नोदकवस्त्रपात्रनिर्गम्य यदीयते श्रेयसे ।
एतद् द्वादशकं व्रतं समुदितं निष्कामदानात्मकं,
सेव्यं भावनयाऽशनादिसमये योगे तु दानेन वा ॥२७॥

अतियमस्कारव्रत ।

भावार्थ—जो संपुष्प अतियिरूपमें धरने आगनमें आये हा
उनको सकारपूर्वक योग्य अन्न ज० वस्त्र पात्र स्थान जादि वस्तु निष्काम
बुद्धिमें केर० आम क०याणके िये प्रदान करना निष्कामदानरूप
बारहँ । नत ह गृहस्थको भोजनादि के समय भागना भाना चाहिये,
अथवा योग मिलने पर दान देकर उस व्रतका अर्थ पात्रन करना
चाहिये ॥ २७ ॥

तृतीयपरिच्छेद ।

सेवाधर्म ।

देशीयजलानिलैरपुरिद सधारित पोषित,
यच्छिक्षाव्यहारतो निपुणता बुद्धेः समासादिता ।
यस्माज्जीवनसाधनानि पसनाञ्जादीनि लब्धानि या,
तेषा प्रत्युपकारिणी सुमनुजाः । सेवा समाश्रीयताम् ॥२८॥

सेवाधर्म ।

भावार्थ—जिस देशकी जलवायुसे यह शरीर बना आर पुष्ट
हुआ है, तथा जिस समाजकी शिक्षा और व्यवहारसे बुद्धिमें निपुणता
आई है और जिन मनुष्यों से जीवन के माघाभूत अन्न वस्त्रादि
प्राप्त हुए हैं, वे संपुष्पो । उनका सेवाद्वारा प्रत्युपकार करना परम
आवश्यक है ॥ २८ ॥

माण करनेमें कम आश्रमों को देनेका दमर्ज देशाप्रकाशिक्रत उपन होता है ऐसा मुनीश्वराने कहा है, इसको दृष्टानुसार यह धर्म नित्य पात्रन करना चाहिये ॥ २५ ॥

पौषधव्रतम् ।

त्यक्त्वा भुषणमालयमेकादिवस कृत्वोपवास पर,
दित्वा पापकृतिं गृहीतनियमस्तिष्ठेच्च धर्मस्थले ।
धर्म यानपरायण शुभमतिस्तत्पौषधाय व्रत,
ग्राह्य पर्वदिनेषु दोष रहित पाल्य विभुद्धयाऽऽत्मन ॥२६॥

पौषधव्रत ।

भावार्थ—साधारण वख के मिश्राय समस्त अलङ्कार पुष्पमाग आदि का त्याग कर एक दिन अथात् २४ घटे चउग्रहार उपवास धारण करे तथा मद्य सासारिक पापकृत्यों में निवृत्त हो नियम धारण कर धर्मस्थान में रहे और वहां परमधर्म ध्यान में लीन रह कर शुभ भावों से रात्रिदिवस यतीन करे इसे पौषधव्रत कहते हैं, धार्मिक गृहस्थ को जष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वदिनों में आमा की शुद्धि के लिये इस व्रत को अपनय पात्रन करना चाहिये ॥ २६ ॥

अतिथिदानव्रतम् ।

ये सत्तोऽतिथयो गृहाङ्गणगताभ्येषा पुरस्कारतो—
योग्यान्नोदकवस्त्रपात्रनिलय यदीयते श्रेयसे ।
एतद् द्वादशरु व्रत समुदित निष्कामदानात्मक,
सेव्य भावनयाऽशनादिसमये योगे तु दानेन वा ॥२७॥

वृक्षका परमार्थजीवन ।

भाषार्थ—हे वृक्ष ' तू पत्र पुष्प फल मूल आदि समस्त अव-
यवांगे आपधरूप बनकर रोग दूर करता है पत्रा द्वाग पशुओंका तथा
मनुष्योंके मनुष्योंके पोषण करता है, तेरे पुष्प प्रनिष्ठित सफुसफु
के मकर तथा पूजाविधिमें काम जाते हैं, आर तेरा ज्ञान्य रीति के
काममें नौका जादि बाहन बनानेमें गृहनिर्माणमें तथा भोजनपरानेमें
काम जाता है आर तेरी छात्र, वस्त्र-वस्त्र बनानेमें काम आती है ।
तू ही पवन आदिमें सतानेवाला भी तू मीठे फल देता है, तेरी
नीतलदाया पवित्रता श्रम दूर करती है, तू वृष्टि आदि का आरक्षण
कर वायु शुद्ध करता है, शक्ति उष्ण और वर्षाकी याथा सहर प्राणी
मात्रकी सेवा करनेवाले हे तरुण ' तूने यह अनुपम परोपकार अत
स्मिन्ने मीसा ' ॥३०॥३१॥

परापकारार्थमत्र सद्गुरुतामन्वित्यम ।

मृषो भ्राम्भति नाशनाथ तमसो लोकोपकाराय च,

मेधो वर्षति प्राति आयुरगलः ज्वालादिमर्यादतः ।

नयो भूमितले वहन्ति नितरा नृणा हरन्त्यो मल,

सद्भावोद्भवन परार्थमवनौ प्रायेण विनायते ॥३०॥

उत्तमवस्तुर्षु परापकारवे त्रियेही होती हैं ।

भाषार्थ—अन्धकारका नाश कर प्रकाश आर गमा पहुँचाकर
समस्त विश्वका उपकार करनेके लिये सूर्य नि य भ्रमण करता है, मेध
यथामय जल बरमाता है, ऋतु आदिनी मर्यादा अनुसार वायु हमेशा
चग करता है, तथा नदियाँ मनुष्योंका मल दूर करती हुई पृथ्वी पर

प्रभुपकारवृत्तेर्न्यापकता ।

ब्रह्मा' पोषणकारणाय ददाति स्वायं सुपकं फलं,
 जगत्वा' प्रकृत्यानि दग्धममलं गायोऽर्षयन्त्यन्वहम् ।
 र' श्वानाऽप्युपकारकस्य निष्पन्नो विस्मरन्ति भणं,
 हन्यान् प्रभुपकारसिद्धनियमधीमान् मनुष्यं कथम् ॥२९॥

प्रभुपकारवृत्तिका-न्यापकता ।

भावार्थ—वृत्त पोषण करनेवाले को श्राद्ध और पत्रे फल देते हैं, गाय मूया घाम ग्वासर प्रतिदिन निर्मल मिष्ट दूध देने ही हैं, और वृत्ते भी उपकार का धर क्षणभर भी नहीं भूलते, अर्थात् जी जान से धरनी सेवा करते हैं । जन कि जन प्राणियाम भी प्रभुपकारवृत्ति केगीतानो ह तत्र बुद्धिमान् मनुष्य इस प्रसिद्ध जार न्यापक नियमना भग वया करते हैं ॥ २९ ॥

वृत्तस्य परार्थजीवनम् ।

त्वं सर्वावयवैर्गद हरसि भो' निष्पात्र भैषज्यम्,
 पत्रै पोषयसे सदा पशुगणान् दुभिक्षशाले नरान् ।
 युज्यन्ते कुसुमानि ते प्रतिदिन सत्कारपूजाविधौ,
 काष्ठे ते कृपिनौट्टहान्नपचने न्वग् युज्यते वल्कले ॥३०॥
 यष्टपात्रैरपकारिणामपि फलं मिष्टं ददासि द्रुतं,
 पान्थाना तु पयःश्रम हरसि वा त्वं छायाया शीतया ।
 वृष्टपात्रैरुपकारायुधुद्धिजनैः शीताऽऽतपादे सह,
 केनेदं तव शिशितं तस्वर' प्राच्य परार्थं व्रतम् ॥३१॥

द्वार है। दूसरेको सुखी देखकर प्रमोद करना दूसरा द्वार है। दुःखी जीवा पर न्या करना तीसरा और शत्रु पर द्वेष न कर उपेक्षा अर्थात् मध्यमभाव धारण करना चतुर्थ द्वार है ॥ ३४ ॥

चतुर्थपरिच्छेदः।

मैत्रीभावना ।

वैश्याग ।

वैरं ह्युत्खदवानलोद्भवकरं चिन्तालनाम्भोपरो,
धर्माभोजद्विषमहाभयस्त्वनिः कर्मप्रवाहाऽऽश्रयः ।
रागद्वेषमदीधराग्रशिरसरं विक्षेपवशोत्सवो,
मैत्री मश्रयणार्थमुत्क्षिप हृदयैतन्समल द्रुतम् ॥३५॥

वैश्या न्याग ।

भावार्थ—उत्खरूप टायाशिको उपन्न करनेवाला यह वैर, चिन्तारूप लताका सींचने के लिये मेघतुल्य और धर्मरूप कमठको जलाने के लिये हिमसमान है, महाभयकी दानि, धोर कर्मप्रवाह का नाश, राग द्वेष रूप परतका ऊचा शिखर ओर चित्तविक्षेपरूप वशन्ते वदनेवाला है, अत एव मैत्री भावनाकी रक्षाके लिये हृदयमे इम वैरकी जडको समूठ उखाट देना चाहिये ॥ ३५ ॥

सर्वेऽपि घातर ।

भ्रातृत्वेन भवान्तरेषु जनिता सर्वेऽपि जीवाःपुरा,
नैकोऽप्यस्ति तथाविधो न रचिता येनात्र सम्प्रन्धिता ।

निम्तर मग रगना ह ममारम प्राय सब उत्तम वम्नुओंका उपति
पमेपकारके त्रिये की प्रतात हाती ह ॥ ३२ ॥

प्राणिनामपि परापकारवृत्ति ।

कोशेय रचयन्ति सूक्ष्मकृपयो नक्तंदित्र यत्नत ,
स्वादिएष्ट मग्मक्षिका मधुभर सचिन्वते सततम् ।
मुक्ता मिभ्रति शुक्यो पि जठरे फस्तूरिका सन्मृगा,
एतेषामसुभारिणामपि जनुर्लोकोपकारार्थकम् ॥३३॥

प्राणियांकी भी परापकारवृत्ति ।

भावार्थ—ग्राटे २ कीं सतदिन परिश्रम करके रेशम उपत
करते ह, मग्मक्षिका निरन्तर उद्योग कर स्वादिएष्ट मनु सचय करती ह
सीप अपने उदरम मोती तथा उत्तम मृग नाभिमें फस्तूरी धारण करते
हैन सत्र कुछ प्राणिया का जीवन भी केवल परेपकारके त्रिये ह
स्वाधरे त्रिये नहीं ॥ ३३ ॥

सेवाधर्मप्रवेशद्वाराणि ।

सेवाधर्मपुरभेवशकरणे द्वाराणि चत्वारि वै,
मैत्री सर्वजनैर्न केनचिदपि हेगस्तदाय प्रतम् ।
मोदोऽन्यस्य सुखेन यस्तदपर द्वार ततीय दया,
दुःखाऽऽप्तेषु चतुर्थमृग्रकलुपे योपेभणाऽऽश्रीयते ॥३४॥

सेवाधर्ममें प्रवेश करनेके द्वार ।

भावार्थ—सेवाधर्मरूप नगरमें प्रवेश करनेके त्रिये चार दवाजे
हैं, किसीमें हेग दोह न कर मनुयमात्रके साथ मैत्री भाव रखना प्रथम

मैत्री क्रम ।

मैत्रीकल्पता प्रयाति वितर्ति शक्तेर्विकाशो यथा,
 तस्यास्तिष्ठति मूलमात्मनिलये स्फुर्यस्तु सन्निधिषु ।
 शाखा देश-समाज-मानप्रगणे विस्तारमापन्नते,
 सर्वप्राणिगणे तदीयशिखर प्रान्ते जगद्द्रवामुते ॥३८॥

मिश्रता का क्रम ।

भावार्थ—यों जो आमाकी शक्ति का विकास होता जाता है
 त्या त्यो मत्रीरूप कल्पता फटती जाती है, उम मत्रीरूप क पत्ता
 का मूल अपने घरमे रहता है अर्थात् मत्री प्रथम घग्मं प्रारम्भ होती
 है, उमका स्फुर्य कुटुम्बिया म शाखा समान देश आर मनुष्यमात्रमे
 तथा शिखर प्राणीमात्र मे रहता है अतमे वस्ते २ यह मैत्री रूप
 क-पत्ता समार मे व्याप्त हो जाती है ॥ ३८ ॥

मैत्रीघातकप्रकृते परिहार ।

वेधर्म्य यदि तत्त्वनिश्चयधिया तत्त्वं समाञ्चरता,
 वैदेश्य यदि दृढता नयगुणस्तस्मात्स्वय दीयताम् ।
 वैजात्येऽपि विगोरभावजनन दोषावह सर्वथा,
 भेदेऽपि प्रकृतेर्द्वयोरनुचित मैत्रीपथोत्सर्जनम् ॥३९॥

मिश्रताघातक प्रकृति का परिहाराग ।

भावार्थ—यदि कोई व्यक्ति विधर्मा अर्थात् मित्र धर्मना । ह
 तो उसके साथ विरोध न करके तत्त्वनिश्चय करनेकी बुद्धिमे तत्त्वनिश्चय
 करना चाहिये, मोड विदेशी है उस से नवीनगुण सीगना तथा मित्राना
 चाहिये, दूसरी जाति गोठे पुरुष के साथ बेग विगोर करना सर्वथा

पुत्रा एन्पग्विलाङ्गिनो भगवत कर्तृत्ववादे पुन
 स्वसन्पग्विला जना समभवन् ते भ्रातरः सोदरा ॥३८॥

मम आवाक साथ भ्रात्रभाष ॥

भावार्थ—सब चीज पहिले किसीनकिसी भयंम पशुपनेको
 प्राप्त हा चुन ह, एसा एक भी चीज नहीं जिसके साथ न पुपने न
 म न न हुआ हा, जो लोग इश्वरकी मष्टिर्त्ता मानते है उनके
 मन से ममन्त जीव इश्वर के पुत्र हैं, एम प्रकार कृतावाती ओर
 अकृतावाती इन दोनों के मत से प्राणीमात्र भाई सिद्ध एण, अतएव
 मां के साथ विगध कृता सर्वथा अनुचित हे ॥ ३६ ॥

श्रमायाचकम् ।

नानिष्ट मनसापि चिन्त्यमाखिल-भ्रात्रात्मरुप्राणिना,
 सित्तिष्ट मनसा धनेन वचसा कयिन कार्य सदा ।

येषा क्षापयति क्षति कथमपि त्वत्तोऽज्ञताया तदा,
 तास्त्व शृद्धधिया क्षमापय मुदा स याद्वये नित्यश ॥३७॥

क्षमा की भिथा ।

भावार्थ—ममस्त प्राणी भाइ हैं, अत एव मनसे भी उनका
 बुरा चिन्तन न कर्गे, किन्तु मन वचन काय मे तथा धन से उनका
 सत्ता भग कर्गे किसी समय अज्ञानवश तुम से किसी को किसी
 तरहकी हानि पहुँची हो तो उचित है कि तुम शुद्ध अत करण मे
 हर्षपूर्वक प्रात साँ और मायका दोना समय नित्य उनमे क्षमा
 माँगे ॥ ३७ ॥

है' (उत्तर) भाई ! मेरी धनम्पति जाति का उदय देखकर मेरे हृदयमें दाहवर उपन होता है, इस लिये मैं जगता हूँ । (प्रश्न) इस पृथ्वी पर तेरे समान दूसरा कौन है जो बिना कारण दुःखी होता है' (उत्तर) मुझसे भी अधिक दुःखाग्नि से जटेहुए वे मनुष्य हैं जो ईर्ष्या करते हैं ॥ ४१ ॥

ईर्ष्यांत सर्वेषु दुःखम् ।

भार्या भव्यतरा सुताश्च सुधियः सम्पत् परा कोटित-

ईर्ष्यालुर्न सुख तथाऽपि लभते दन्दद्यते मानसे ।

नो पश्येत् सुखिन कदापि कमपि त्वापीह भूमण्डले,

तथैवैष भवेत् सुखी परमहो ! नेदरुस्थितेः सभव ॥४२॥

ईर्ष्या नै सदा दुःख होता है ।

भावार्थ—उत्तम पतिव्रता स्त्री मित्री हो, पुत्र बुद्धिमान् हो, और ऋगेटो से भी अधिक सम्पत्ति हो तथापि ईर्ष्या करनेवाला मनुष्य कभी सुख का अनुभव नहीं कर सकता कारण कि वह नियमनंम जग करता है, यदि हम भूमण्डल पर कहीं पर किसी समय सुखी मनुष्यको न देखें तब ईर्ष्यालु मनुष्य सुखी हो सकता है किन्तु ऐसा होना अशक्य है अर्थात् ईर्ष्यालु मनुष्य सुखकी सामग्री नें होते हुए भी सदा दुःखी ही बना रहता है ॥ ४२ ॥

नानि शक्यं नश्चा स्वभावभेदं होन पर भी मैत्रीभाव का त्याग
कर्मना अनन्तित ॥ ९ ॥

पथम्यादिषु मरु पि न मैत्रीघात ।

पथम्य पि मद्य तिष्ठति सदा किं द्रव्यपट्टं न या ? ।

वेदेषु पि चणोरचन्द्रवृमुदे हासो न मैत्र्या सदा ।

उजा यऽपि वन सत्वेन तरवास्तिष्ठन्ति बहु-यादिभिः ,

त्रि त्या-या मनुमैस्तदा सुखरुः। मैत्र्यल्पभेदोद्भवे ॥४८॥

धम-भदादिषु गतन पर भी मैत्रीघात घात नहीं होता ।

भावार्थ—जीवादि उक्त द्रव्याणां स्वभाव भिन्न मित्र है तथापि
य द्र य त्म लक्ष्म मरुता एक साथ रहते हैं, उमुत् चन्द्र और चणोर
मित्र र तेशुम रहते हैं त्रि तु कभी इन ती मत्री का हान नहीं होता,
वृक्ष और वृताभा म जाति भेद ह तो भी दनम एक साथ निवास
करते हैं, चर त्रि उक्त पत्थ्या म स्वभाव भेद, देशभेद और जातिभेद
मैत्री के बाधन नहीं होते तो म्या मनुष्योंका उचित है त्रि थो-म
भेद रहने पर म्या सुरतायिनी मित्रता का त्याग करदें ॥४८॥

इष्यादिय ।

रे दुर्भागियशासक ! ज्वलसि किं कात्रे म्बुवाटोदये ? ,

दृष्ट्वा जातिमहादय मनसि मे दाहज्वरो जायते ।

स्यात्कश्चिज्जगतीतले त्वदुपमो निष्कारण दु खितो,

मनोऽप्युग्रविपाददग्धहृदया ईर्ष्याज्वरो मानवा ॥४९॥

इष्यारूप दोष ।

भावार्थ—श्रे दुभाग जवामिया ! तू वपारुतुम रथों जलजता

करने लगते हैं चमोर मेघनी विन्दु पास जति आनन्दित होते हैं
वसी प्रसार ह मानन । तृ भी मानन उद्युक्तो न अभ्युत्थ त्वेव
हर्षे रोमाञ्च धारण न अयात् प्रमन हो ॥ ७३ ॥ ॥४४॥

त्रिया
। नी
दूरन
मना

उत्थाप्रमादया फटम् ।

ईर्ष्यायाः फलमाप्स्यमि प्रगुणिताभीर्ष्या परेभ्यः पुन-

मोदम्योत्कटमोदमेव जगतम्ब लप्स्यमे प्राञ्जलम् ।

मोदन्ता मम सम्पदा परजनां दुर्ननु नेर्ष्यामिति,

चाञ्छा ते मनसस्ततो भज सदा मोद नमीर्ष्या न्यज । ४५ ॥

ईया जोग प्रमोदका फ ।

। ।

भावार्थ—यदि तुम दूसरे की ईर्ष्या करोगे तो दूसरे भी तुम्हारी

दुर्नी ईर्ष्या करे, तथा तुम दूसरे की उन्नतिमें हर्ष मनाओगे तो दूसरे भी ४५ ॥

तुम्हारी उन्नतिमें अविद रूप मनोभंग अथान ईर्ष्याका फट हर्ष और ४५ ॥

हर्षका फट हर्ष है यदि तुम्हारी ईर्ष्याका फट ऐसी है कि मग ४५ ॥

सपत्ति में दूसरे हार्षण हा छोट भी ईर्ष्या न कर तो गरित है कि तुम ४५ ॥

दूसरे की ईर्ष्या न कर मग हर्ष करे ॥ ४५ ॥ ४५ ॥

तो हम ना
ई सुर्य जागगा

षष्ठ परिच्छेदः ।

॥

करुणाभाषता ।

द्वयरोमादिता-

ये केनचित्पीडिता ।

न्ति ये ये भुधा,

गच्छन्ति साहाय्यकम् ॥२०॥

समर्पितभक्षणया स्वपति विरुद्ध
वर्धनरासनदक कश्चित् कश्चित्
सुख न कश्चित्
द्वयरोमादिता

पञ्चमपरिच्छेदः ।

प्रमोदभाषना ।

परमस्पृहो प्रमोदः ।

कर्त्तव्यव्रतपालने यदि रचिस्तूरतस्त्वप्यता-

मीर्ष्याल्लेशमिताऽपि दोषजनिका सेवारूपदार्गला ।

दृष्टो रूर्षवत परान् समुदितान् मन्मानितान् सादर,

मोदस्व त्वमल्ल विभृद्धमनसा पद्म यथाऽर्कोदयम् ॥४॥

वृक्षा पल्लरिता लता पुल्लरिता पुष्पैर्वसन्ते यथा,

श्रुत्वा म्भोधरगर्भना गिरितटे मत्ता मयूरा यथा ।

लम्बा तोषद्विदुमेति रिपुल्ल र्ष्य यथा चानको,

दृष्ट्वा म्नुजन भगोन्नततर रोमाञ्चितस् व तथा ॥४४॥

दूतरे का सम्पत्तिशाग देखकर प्रमन होना ।

भावार्थ—यदि वन यन्त्र व्रत पालने की उच्छृङ्खला है तो रोश मात्र भी दर्षा नहीं करना चाहिये, क्योंकि दूषा सेवारूप दार्गको बद कमेवरा १ आग है, दूतरे को उन्नतिशाली तथा हृषित एव आदर से सम्मान पाने लुण देवकर शुद्ध हृदय से वृत्तिप्रमन होना चाहिये, जैसे सूर्यका उच्च देवकर रूप प्रमन होना है । वसन्तस्तु मा आगमन देवकर वृक्ष नरीन पल्लव को तथा एताए पुष्पों काग रोमाञ्च को धाम्ग करती है, मेषकी गर्भना सुन मयूर मन होकर नृत्य

शुद्धगाभायना ।

भावार्थ—जैन आगमम परगाफी समष्टिरूप फटा है । तथा चांद्र और वैदिक धर्ममे हमे धमरूपक का मूट बताया है, दयाविना साधुपना और श्रावकपना दुःख है, तथा हमके विना सेवाधर्मरूप माग पर पौर रमना टुफर है ॥ २६ ॥

परुणापरम ।

सर्वेऽपि मियजीवनास्तनुमृतो वा उन्नि सांग्य मदा,
दु ख कोऽपि न वाळउनि त्वमिर नो मृत्यु न चानाग्गम् ।
यत्त वाळउसि देहि तत्परुणयाऽन्धेभ्यो जनेभ्यो मुदा,
त्व तत्साप्ससि देवतो रहुनर मयश्च यणेपने ॥२७॥

परुणा का पर ।

भावार्थ—मर प्राणियों को करना जीवन प्रिय है, सब जीव तुम्हारी तरह मदा सुखकी इच्छा रखते हैं, तथा दु ख मृत्यु और अनादरमे मुद्द मोडते हैं तुम जिस बन्धु को चाहते हो उसे प्रमत्ततापूर्वक देखो तच्छा प्रदान करो भावपरयो तुम्ह भरर मित्री ॥ २७ ॥

परुणा विना मर्ध निष्फलम ।

किं द्रव्येण फल न येन परुणापाप्रम्य दु ख हत ।
किं देहेन न योऽपित क्षितितले प्रमत्ताहिना रसणे ।
किं शक्त्या न ययोद्धता परुणया दु खार्दिता प्राणिन ,
किं युद्धया न ययाद्धित निवपय कर्माघाविच्छित्तये ॥२८॥

करण विना मत्र निष्फल ।

भावार्थ—जिस द्रव्यसे करुणापात्र जीवोंका दुःख दूर न किया
जस द्रव्य से क्या फल ? जिस शरीर मेंपाँचित प्राणियोंकी रक्षा न की
उम शरीरमें क्या लाभ ? वह शक्ति जिस कामकी जिससे करुणापूर्वक
दुःखितजीवोंका उद्धार न किया, उस बुद्धि से क्या फल जिममें कर्मका
कारण करनेवाला मोक्षभाग नहीं पहिचाना ॥ ४८ ॥

पुण्यवृक्षसेचनाय करुणा ।

साम्राज्य सुप्रशः सुप्र च सुहृदो विद्या विनीता सुता-

स्तानीमानि फलानि पुण्यसुतरोः प्राप्तानि सप्रस्त्वया ।

सिञ्चैन करुणाजलेन सतत चेद्रक्षितु चान्त्रसि,

नो चेच्छोपमुपैष्यति द्रुततरसौरय च ते नङ्घ्यति ॥ ४९ ॥

पुण्यरूप-वृक्षको सींचने के लिये करुणा की आवश्यकता ।

भावार्थ—गण्डर्भी कीति सुप्र विद्या मित्र आर विनीत-

पुत्र जो तुल्य इस समय प्राप्त हैं ये सब पुण्यरूपवृक्ष के फल हैं,
यदि इस पुण्यवृक्ष को सदा दस भरा रगना चाहते हो तो इस का
निरंतर करुणाजल से सिंचन करो अथवा वह शीघ्र सूर्य जागगा
और तुम्हारी सुरसामग्री अदृश्य हो जायगी ॥ ४९ ॥

करणपात्राणि ।

ये दीना विकलाङ्गिनो विधिहता दारिद्र्यरोगादिता-

वृद्धा वा विधवा अनाथशिशवो ये केनचित्पीडिताः ।

दुर्भिक्षे वृणधान्यदुर्लभतया सीदन्ति ये ये क्षुधा,

ते सर्वे करुणास्पद धनवता वान्छन्ति साहाय्यरुम् ॥ ५० ॥

कृष्णापात्र जीव ।

भावार्थ—मैंन अपैंग भाग्यहीन त्रिद्वी गेगी वृद्ध विधवाएँ
 अनाथनाथ किसी द्वारा सताये गये निराश्र मनुष्य तथा अभक्षसमय
 अन्न धान विना भृग्न मग्नेनाये प्राणी ये मत्र कृष्णापात्र ह तवा
 धनवाना मे जाथिंर सहायता की न द्या गखते ह ॥ ५० ॥

सप्तमपरिच्छेद ।

मा यस्थ्य रायना ।

पापेभ्य परिमोचनाप जगतश्चेत्ते मनोभावना,
 मा यस्थ्य परिशीलनीयमनिश तस्यास्तदा सिद्धये ।
 गा यस्थ्येन विना मनस्समतुला वैषम्यमापद्यते,
 त्रैषम्येण पतेत्स्वय गुणगणानूरेऽन्यमुक्ते तथा ॥५१॥

मायस्थ्यभायना ।

भावार्थ—तुम यदि ससारके प्राणिया के पाप से छुटाना
 चाहते हो तो निरन्तर मायस्थ्य-भावना का अभ्यास करो, क्योंकि
 मायस्थ्यभायना के विना मन की समता, विषमता का रूप धारण
 करलेती ह तसरेको पापमे मुक्त करना तो दूर रहा विषमता के
 कारण आप स्वय गुण समूह से गिरनाता ह ॥ ५१ ॥

सहिष्णुता ।

सेवाया जनतोपकारकरणे धर्मस्य सचारणे,
 सत्योत्कृष्टसहिष्णुता मनसि तेऽवश्य सदाऽपेक्षिता ।

द्व्युस्त्वा प्रतिपक्षिणस्तदपि नो कोपो विपादोऽथवा,
नऽपेक्षापि च धैर्यमल्पमपि चेत्त कार्यासिद्धिस्तदा ॥७०॥

सहनशीलता ।

भावार्थ—द्वेषसेवा, मानव समान का उपकार जो धर्मप्रचार करने के लिये हृदयमें मरदा विगाह सहनशीलता रगना आप यक हे, यदि शत्रु मारने को भी उद्यत हो तो कोप जयना रोद न करे जोर विधिमात्र धयको न छोडे तब ही कार्यकी सिद्धि हो सकती है ॥ ५२ ॥

पापिनामपि न तिरस्कार ।

भूयासोऽपि विरोधनस्तुनुवृतः स्युः पापकार्ये रता-
वो यास्ते मृदुनम्रसोधयचनै सामान्युपायैस्त्रिभिः ।
कूरत्वान्मृदुता भजन्ति न च ते केनाप्युपायेन चेत्,
कर्त्तव्य तदुपेक्षण न च तिरस्कारो-थवा ताडनम् ॥७३॥

पापी मनुष्य का भी तिरस्कार नहीं करना चाहिये ।

भावार्थ—ह आत्मन् ! इस समारंभ बहुत से प्राणी तेरा विरोध करनेवाले हैं जो कि पापकर्म में लवलीन हैं उनको साम दाम और भेद इन तीन उपायों से तथा मीठे जाँ कोमल उपदेश द्वारा समझाना चाहिये यदि वे क्रूरजीव किसी प्रकार क्रूरताको छोडकर कोमलता धारण न करें तो उनकी उपेक्षा करनाही उचित है किंतु उनका तिरस्कार अथवा ताडना करना उचित नहीं ॥ ५३ ॥

पापम्येय नाशा न नु पापिनाम् ।

कार्यं पापविनाशन तदपि नो नाशेन पापयज्ञिनो,
 प्राते पापिजनस्थ हिंस्रतया पापस्य वृद्धिर्भवेत् ।
 वस्त्राद्दर्मलनाशनार्थमुचितं नो रक्षत्रिच्छेदन,

त्रिन्त्रत्पात्रजलेन तत्र मृदुता रस्त्रान्मलोत्सर्जनम् ॥५४॥

पापियों का नाश न करके पापकाहो नाश करना चाहिये ।

भावार्थ—पाप का नाश करना चाहिये किन्तु पापका नाश
 करना अनुचित है वया कि पापमनुष्य का घात करने से हिंसा
 होता है और हिंसा से पापकी वृद्धि होती है, रक्षत्रि का भेद दूर
 करने के लिये वस्त्राच्छेदन करना युक्ति सगत नहीं, किन्तु जल से
 रक्षत्रों को भेद दूर करना ही युक्ति सगत है इसी प्रकार
 पापियों को भेद वचना द्वारा पाप में छुटना योग्य है ॥५४॥

शान्तिपूर्वकमाध्यस्थयेनेय विजय ।

सामर्थ्येऽपि सद्दिष्णुना समुचिता सेवाद्विकार्ये नुव,

दौर्बल्यं यदि मम्यते तदपि नो सम्यक् स्वसत्त्वादयात् ।

शांतिक्लान्तिसमाश्रयेण सततं मा चस्थपमावाश्रये,

जह्यस्तत्प्रतिपक्षिणोऽप्यवनता धाष्टर्यं च पापाग्रहम् ॥५५॥

शान्तिपूर्वक मध्यम्यभाय से ही विजय होती है ।

भावार्थ—शत्रुसे बदला देने की शक्ति होने पर भी देशसेवा
 आदि कार्य करनेवाले को सहनशीलता धारण करना उचित है, सहन
 शीलता को दुर्बलता मानना युक्त नहीं, क्योंकि आमाका बल प्रकट

होनेमें ही सतनशीलता उपजती होती है, अतः एव शांति और क्षमा का अग्रगण्य कर मध्यम भाव धारण करना चाहिये, ऐसा करने से तुम्हारे शत्रु भी अपनी शृष्टता और कटाघट को छोड़ नम्र हो जायेंगे ॥ ५५ ॥

अष्टमपरिच्छेद ।

मनुष्यमेधा ।

निर्नाथाः पशवो यथा करुणया पश्वालये यत्नतो-

रक्ष्यन्ते करुणाद्भिर्भविजनैः कृत्वाऽपि भूरिव्ययम् ।

निर्नाथा मनुजाम्त्वयैव करुणानुद्धया श्वरक्ष्याः सदा,

यत्सन्ति मधमेऽधिकारिण इमे नुद्धयादिवैशिष्ट्यत ॥५६॥

मनुष्य-मेधा ।

भावार्थ—जैसे ख्यात मनुष्यमनुष्य करुणानुद्धि से बहुत धन संचय करके विजरापोट बनवाते हैं और उसमें बड़े धन से अनाथ पशुओं की रक्षा करते हैं। इसीप्रकार करुणानुद्धि से अनाथ मनुष्यों की रक्षा करना परम आवश्यक है। कारण कि पशुओं से मनुष्यों में ज्ञान अधिक होता है, अतः एव रक्षा कार्यमें इनका प्रथम अधिकार है। अर्थात् पहले मनुष्यों की रक्षा करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अनाथयात्मेधा ।

येषा नास्ति पिता नचापि जननी नोपौ न च भ्रातरो-

धागस्ते करुणात्या विधिहता भ्राम्यन्त्यनाथा यतः

तेषा रक्षणहेतवे स्वविषये मस्थाप्य गालाश्रम,
साहाय्य धनिकैर्जनै समुचित द्रव्येण कार्य स्वयम् ॥५७॥
अनाथ बालकांकी सेवा ।

भावार्थ—जिन बाटकों के माता पिता भाई आदि मोट रक्षा करनेवाग न हो ऐसे करणापात्र अनाथ बाटक दुर्भाग्यवश इधर उधर भोगे फिरते हैं धनिक पुरपोंका कर्त्तव्य है कि उन अनाथ निरा धार बाटकों की रक्षा और शिक्षा के लिये अपने देश में अनाथालय स्थापन करें तथा यथाशक्ति द्रव्यद्वारा स्वय सहायता करें और दूसरों से करवाव ॥ ५७ ॥

बालसेवा विषये माधारणजन कर्त्तव्यम् ।
सामाधैरापि मानवैर्जनपदे पर्यत्र्य पृष्ठा जनान्,
शोभ्या नाथविहीनदीनशिशव सशृष्ट तानाश्रमे ।
रक्ष्या रक्षणपद्धतिश्च मुहशा लोळुभ्यता नित्यश,
स्यात्तत्र स्वलना कथाश्चिदपि सा तान्नायकान् ज्ञाप्यताम् ॥५८

बालसेवा प्रति माधारण मनुष्यों का कर्त्तव्य ।

भावार्थ—जिन मनुष्यों की द्र य से सहायता करने की शक्ति नही है, उनका कर्त्तव्य है कि वे देशके भितर २ स्थानों में घूमें । तथा उन २ ग्रामों के मनुष्यों से पूछकर दीन हीन अनाथ बालका को ढूँढ़ें, ओर रक्षानिमित्त अनाथाश्रममें समष्ट करें तथा नियमप्रति आश्रमका कार्यक्रम और रक्षणपद्धति का अच्छी तरह निरीक्षण करें । यदि इस में किसी प्रकार की त्रुटि सिद्धित हो, तो आश्रम के मुखियाओं को सूचित करें ॥ ५८ ॥

भिन्नभिन्नप्रकारेण सेवाऽर्जनम् ।

विद्वोश्चित्पठनोऽग्रतान् सरलया रीत्या मुदा पाठय,
शिल्पी चेदुचिताश्च शिक्षय कला निष्कामवृत्त्याऽखिलाः ।

वक्ता चेदसि दर्शय प्रवचनैः सर्वातिमार्गं सदा,
वैश्वेत्कुरु रोगनाशनकृते तेषा व्यवस्था शुभाम् ॥ ५० ॥

वैश्यश्चेद्भव कार्यवाहकतया वस्तुव्यवस्थापकः,
श्रीमाश्चेच्छुयोग्यवस्त्रनिकर देहि प्रसङ्गोत्सवे ।

मामान्यो यदि शसनेन जनतामध्यऽस्य सञ्चारणं,
सेवामर्जय येन केनचिदपि त्व स्वार्थवृत्तिं विना ॥ ६० ॥

भिन्न भिन्न प्रकारके मनुष्यों की भिन्न २ सेवा ।

भावार्थ—सेवा की इच्छा रखनेवाला विद्वान् आश्रमके बालकों को प्रेमपूर्वक सुगमगीति से पढावे, ऋगीगरनिष्कामबुद्धिसे सपूर्ण योग्य कलाकौशल सिखावे, वक्ता उपदेशद्वारा सदा उत्तम नीतिमार्ग दिखावे वैद्य त्यानपानादि की उत्तम व्यवस्था करे जिससे बालक नीरोग रहें अथवा रोग उपन्न होने पर योग्य चिकित्सा करे, वैश्य कार्यभार धारण कर-आश्रमकी वस्तुओंकी व्यवस्था करे धनवान विवाहादि उत्सव पर अनाथ बालकों के योग्य वस्त्रादि प्रदान करे साधारणपुरुष जनसमुदाय में कार्य की यथार्थ प्रशंसाद्वारा आश्रम का प्रचार करे अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि स्वार्थ त्यागकर यथाशक्ति सेवा करने में ऋटिबद्ध रहे ॥ ५९ ॥६०॥

नवमपरिच्छेद ।

ग्राम्यशाला ।

यद्ग्रामे शिशुशिक्षणाय न भवेच्छालादिक साधन,
सेवास्थानमिदं वर भुविदुषा त्रिधाधिशिक्षात्मकम् ।
श्रीमन्तोऽपि च शक्नुवन्ति धनतः सम्प्राप्य शालामिदं,
सेवापुण्यमुपाजितुं च पितृता कीर्तिं जनाशीर्वच ॥६१॥

गाथ में पाठशाला ।

भावाथ—जिस गाव में गाँवका की शिक्षा के साधन पाठ-
शाला आदि न हो तो विद्वान् पुरुष शक्ति अनुसार विद्यार्थियों को
विद्याभ्यास करावें, और श्रीमान् पुरुष धनवत् से शाला स्थापित करें
अथान् प्रत्येक मनुष्य विद्यार्थी सेवा के शुभ अवसर को हाथ से न
जान दें कारण कि इस से पुण्य का उपादन, कीर्तिका विस्तार और
जनसमुदाय का आशीर्वाद दियादि एक साथ अनेक लाभ होते हैं ॥६१॥

शूद्रशिक्षणम् ।

शूद्राणामपि शिक्षणेन चरितं शुद्धं भवेन्नैतिकं,
नश्येदुर्व्यसनोद्भवं च दुरितं दैन्यं च दूरीभवेत् ।
सेवाक्षेत्रमिदं धनाढ्यविदुषोर्भव्यं विशालं ततः—
स्ताभ्यां शूद्रशिक्षणार्थमुचितं कार्यं प्रपद्ये वरं ॥६२॥

शूद्रशिक्षा ।

भावार्थ—शूद्रों को शिक्षा देने से उन का नैतिक चरित्र पवित्र हो जाता है । जूआ चोरी मदिरापान आदि दुःर्यसन का नाश होने से उससे होनेवाला पाप तथा दीनता दूर हो जाती है, विद्वान् और धनवान् दोनों के लिये यह सत्तम और विशाल सेवाक्षेत्र है । अतएव विद्वानों और धनवानों का कर्त्तव्य है कि शूद्रों की शिक्षा का योग्य प्रयत्न करें ॥ ६२ ॥

दीनाना पुस्तकादिमाहायम ।

ये दीनाः स्वसुतान्न रक्षितुमल गेहेदरिद्रत्वतो,

नैवाप्यर्पयितु क्षमाः सुविदिते चालाश्रमे लज्जया ।

तेभ्यो सुप्तयाऽन्नपुस्तरूपदान् देहि स्वय दापया—

न्येभ्यः पाठयितु सुताग्निजगृहे यच्छस्त्रनुयुम्ते सुखम् ॥६३॥

गरीशों को पुस्तकादि की महायता ।

भावार्थ—जो निर्धन कुर्गन मनुष्य धन के अभावसे अपनी सन्तान की रक्षा शिक्षा का प्रयत्न नहीं कर सकते, तथा लज्जाग्रस्त अनाथाश्रम आदि प्रसिद्ध सस्थाओं में भी नहीं भेजसकते, ऐसे मनुष्यों को अन्न वस्त्र पुस्तक आदि का सुप्तदान स्वयं दे और दूसरों से लिखें जिस से वे अपने घर में सन्तान की रक्षा शिक्षा का प्रयत्न सुसपूर्वक कर सकें ॥६३॥

विद्यार्थिगृहम् ।

वाञ्छन्त्युत्तमशिक्षण पुरवरं ग्रामस्थविश्वार्थिनो,

नो चेत्पाकानिवासमन्दिरमिह स्यात्तत्र तद्दुर्दशा ।

नवमपरिच्छेद ।

ग्राम्यशाला ।

यद्ग्रामे शिशुशिक्षणाय न भवेच्छालादिः साधनं,
सेवास्थानमिदं वरं भुविदृष्ट्वा विद्याधिशिक्षात्मकम् ।
श्रीमन्तोऽपि च शक्नुवन्ति धनतः सम्थाप्य शालामिह,
सेवापुण्यमुपाजितुं च वितना कीर्तिं जनागीर्षच ॥६१॥

भाव में पाठशाला ।

भाषा—जिस गाँव में पाठशाला की शिक्षा के साधन पाठ-
शाला आदि न हो तो विद्वान् पुरुष शक्ति अनुसार विद्याधियों को
विद्यायाम करावें, और श्रीमान् पुरुष धनतः से शाला स्थापित करें
अर्थात् प्रत्येक मनुष्य विद्यार्थी सेवा के शुभ अयमर को हाथ से न
जानें दें कारण कि इस से पुण्य का उपार्जन, कीर्ति का विस्तार और
जनसमुदाय का आशीर्वाद इत्यादि एक साथ अनेक लाभ होते हैं ॥६१॥

शूद्रशिक्षणम् ।

शूद्राणामपि शिक्षणेन चरितं शुद्धं भवेन्नैतिकं,
नश्येत्सर्वसमोद्भवं च दुरितं दैव्यं च दूरीभवेत् ।
सेवाक्षेत्रमिदं धनान्धविदुषोर्भव्यं विशात्र ततः—
स्ताभ्यां शूद्रकाशिक्षणार्थमुचितं कार्यं भवत्येव वरः ॥६२॥

शूद्रशिक्षा ।

भावार्थ—शूद्रों को शिक्षा देने से उन का नैतिक चारित्र्य पवित्र हो जाता है । जूआ चोरी मदिरापान आदि दुर्व्यसन का नाश होने से उससे होनेवाला पाप तथा दीनता दूर हो जाती है, विद्वान् और धनवान् दोनों के लिये यह सवात्तम आर मिश्रण सेवाक्षेत्र है । अतएव विद्वानों और धनवानों का कर्त्तव्य है कि शूद्रों की शिक्षा का योग्य प्रबन्ध करें ॥ ६२ ॥

दीनाना पुस्तकादिमाहाय्यम् ।

ये दीनाः स्वसुतान् रक्षितुमल गेहेदरिद्रत्वतो,
नैवाप्यर्पयितु क्षमाः सुविदिते बालाश्रमे लज्जया ।

तेभ्यो गुप्ततयाऽन्नपुस्तकपटान् देहि स्वय दापया—

न्येभ्यः पाठयितु सुतान्निजगृहे यन्ऽड्वन्नुयुस्ते सुखम् ॥६३॥

गरीबों को पुस्तकादि की महायता ।

भावार्थ—जो निर्धन कुलीन मनुष्य धन के अभावसे अपनी सन्तान की रक्षा शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते, तथा लज्जावश अनाथाश्रम आदि प्रसिद्ध सस्थाओं में भी नहीं भेजसकते, ऐसे मनुष्यों को अन्न वस्त्र पुस्तक आदि का गुप्तदान स्वयं दें और दूसरों से दिलावें जिस से वे अपने घर में सन्तान की रक्षा शिक्षा का प्रबन्ध सुखपूर्वक कर सकें ॥६३॥

विद्यार्थिगृहम् ।

वाञ्छन्त्युत्तमशिक्षण पुरवरे ग्रामस्थविद्यार्थिनो,
नो चेत्पाकनिवासमन्दिरमिह स्यात्तत्र तद्दुर्दशा ।

तेषां दुःखनिवारणाय धनिकैः केनापि सद्भवेन वा,
 स्थाप्य शिक्षणधर्मसाधनयुतो विद्याधिनामाश्रमः ॥६४॥
 छात्राश्रम (बोर्डिंग हाउस)

भावार्थ—प्रामाण्य छात्र उच्च शिक्षा पाने की इच्छा करते हैं
 किंतु गात्रा में ऐसा साधन नहीं है, अतः उन्हें शहर में रहना पड़ता
 है और वहाँ पर उनकी भोजन शयन आदि के लिये योग्यस्थान न
 मिलने से बहुत कष्ट सहना पड़ता है। इसलिये श्रीमानों को उचित है
 कि एक वा अनेक मित्रों उनका कष्ट दूर करने के लिये बोर्डिंग
 स्थापित करें जिसमें शिक्षा और धर्म के उत्तमोत्तम साधन हों ॥६४॥

छात्राश्रमव्यवस्था ।

निर्नाथाश्रमवद्भवेद्यमापि क्षेत्रे हि सेवार्थिना,
 गन्तव्यक्रमशो जनैस्त्रिचतुरैश्छात्राश्रमे नित्यशः ।
 तेषां भोजनपद्धतौ यदि भवेन्न्यौय निवासालये,
 तूरे क्रियता स्वयं हितधिया यद्वाऽधिपायोन्यताम् ॥६५॥

छात्राश्रम की व्यवस्था ।

भावार्थ—अनाथाश्रम की भाँति यह छात्राश्रम भी सेवार्थी
 पुरुषों का सेवाक्षेत्र है, छात्राश्रम की देखभाल करने के लिये दो २
 चार २ सेवार्थी महारथों को प्रतिदिन वहाँपर जाना चाहिये तथा
 छात्रों की भोजनादि व्यवस्था में न्यूनता प्रतीत होने पर हितबुद्धि से
 स्वयं दूर करना चाहिये अथवा आश्रमके अधिपता को सूचित
 करना चाहिये ॥६५॥

न्याय्यबुद्ध्या व्यवस्था ।

कुर्युस्ते न परस्परेण कलह नो दुर्बलानादर,
वर्त्तेरन् स्वतडोदरा इव सदा योज्य तथा नायकैः ।
को दीनो धनिकश्च क' करणया दृष्ट्या निरीक्ष्योऽत्र को,
ज्ञात्वा सर्वमपक्षपातमतिभिः कार्यं व्यवस्थाऽखिला ॥६६॥

न्याय्यबुद्धि से व्यवस्था ।

भावार्थ—यत्रस्थापक लोग विचारियों की ऐसी व्यवस्था कर जिस से वे परस्पर कह न कर सकें, बलवान दुर्बलको न सता सकें, सदा भाई समान व्यवहार करें जान ध्यान धनिक है और कौन दरिद्र है अथवा कौन अधिक दया का पात्र है ऐसा जानकर प्रत्येक कर्ता पक्षपात रहित यथायोग्य सब प्रयत्न करे अर्थात् ऐसा प्रयत्न करे जिस में किसी शत्रु को कोई कष्ट न हो ॥ ६६ ॥

धार्मिकशिक्षणेनैव विद्यामाफलयम् ।

विद्या धार्मिकशिक्षणेन रदिता नो शोभते सर्वथा,
वस्त्राभूषणभृपिताऽपि महिला शीलिन हीना यथा ।
विग्रन्ते सकला कला न सकला धर्मेण युक्ता न चे-
हीनारः किमु मुद्रयैव लभते मूल्य सुवर्णं विना ॥६७॥

धार्मिक शिक्षा से ही विद्या की मफलता ।

भावार्थ—जैसे वस्त्र आभूषण से सजी हुई स्त्री शीघ्रिना शोभा नहीं पाती, ऐसे ही व्यापहारिक शिक्षा भी धार्मिक शिक्षा के बिना शोभा नहीं पाती, समस्त कलाओं में निरुण होना भी एक धर्मकला विना

निरथक ह जैसे खोग मुहर सुन्न विना सिक्के मात्र से मूय नहीं
पा सकती ॥ ६७ ॥

कीदृश धार्मिकशिक्षणम् ? ।

स्याच्छिष्टाभिजनोचित सुचरित विद्याधिना सर्वदा,
शुद्ध निर्व्यसन स्वधर्मनिरत नीयाश्रित चोन्नतम् ।

श्रद्धा शुद्धतरा मतिश्च विदला ज्ञान भवेत्तात्परि,
देय शिक्षणमीदृश स्वचरितौपम्येन सच्छिष्टैः ॥ ६८ ॥

धार्मिक शिक्षा कौनो ऋणी चादिय ।

भावार्थ—जिस विद्या से विद्याधियों का चरित्र सदा सज्जन
पुरुषा के योग्य निरमल व्यसन रहित धार्मिक नीति—अनुकूल और
उन्नत बने, धर्मश्रद्धा अत्यन्त शुद्ध रहे, बुद्धि निर्मल होती जाये और
तात्परि ज्ञान वन्ता जाये एसी शिक्षा उन स्वचरित्र उदार शिक्षकों
से मिले तिन के सदाचार से उक्त शिक्षा का अभ्यास होना रहे ॥ ६८ ॥

धार्मिकशालास्थापना ।

तस्माद्धार्मिकशिक्षणोऽयं त्र्यम्बके विद्यार्थिवर्गोऽमले,
सेवातत्परमण्डलेन सुहृदा स्थाप्या. मुशाला पुनः ।
अत्रोदारविद्या परार्थधनिभि सेवा विधेया त्रिधा,
देय शिक्षणमुत्तम स्वयमल सेवार्थिभि शिक्षतै ॥ ६९ ॥

धार्मिक विद्यालयकी स्थापना ।

भावार्थ—शुभचिन्तक सेवक मण्डल को निर्मल विद्यार्थी वर्ग
में धार्मिक शिक्षा की उन्नति के लिये उत्तम विद्यालय स्थापन करना

चाहिये, उदार बुद्धिवाले परोपकारी धनाढ्यों को चाहिय कि धनद्वारा उक्त विद्यालय की यथेष्ट सेवा करें तथा सेवार्थी शिक्षकों को उचित है कि स्वयं निदाप विद्या का अभ्यास कराएँ, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी-२ योग्यतानुसार इस कार्य में सहायक बनकर धर्म सेवा का परिचय दें ॥६९॥

धर्मशिक्षणाभिरुचिसम्पादनम् ।

तत्तद्दर्मपरायणाः सुगृहिणः सर्वेऽपि त्रिशाकृते,

प्रेष्येयुस्तनुजान्निजान् गतिदिन काले यथा निश्चिते ।

न स्यात्कारणमन्तरैकदिवसः सून्यो यथा पत्रके,

छात्रे तत्पितरौ तथापिधरुचिं सम्पादयतामुभौ ॥ ७० ॥

धर्म शिक्षा में रुचि उत्पन्न करना ।

भावार्थ—अपने अपने धर्म में त पर सब सदगृहस्थोंको उचित है कि वे अपने पुत्रा को विद्याऽध्ययन के लिये प्रतिदिन नियत समय-पर पाठशाला में भेजा करें, माता पिता को छात्र के हृदय में ऐसी रुचि उत्पन्न करना चाहिये जिससे बालक की एकदिन भी गैरहाजिरी न होने पाये ॥ ७० ॥

सुपरिणामं विना शिक्षणैफल्यम् ।

किं तद्धाम्मिकशिक्षणेन न यतो त्रिशार्थिना जीवन,

जात धर्मपरायण दृढतरश्रद्धाऽन्वित सात्त्विकम् ।

किं चिन्तामणिना यतो विनिहता नैकाऽपि चिन्ता हृदो,

दारिद्र्य दलित न येन दुरित तत्कल्पवृक्षेण किम् ॥७१॥

अच्छा परिणाम न होने पर शिक्षा की निष्फलता ।

भावार्थ—निस धार्मिक शिक्षा से विद्यार्थियों का जीवन धार्मिक ऋद्धि श्रद्धाशाला और सावित्र न बने उस धार्मिक शिक्षा से क्या लाभ वह कि लाभों में निस कामना निस से मन की इच्छा पूर्ण न हो, उम रूप में क्या लाभ निस से ऋद्धिशास्त्र दुष्कर्म नष्ट न हो, अथवा धार्मिक शिक्षा ऐसी चाहिये जिसमें छात्र धर्मश्रद्धा वा और सदाचारों बन ॥७१॥

परीक्षोपायने ।

ससाह प्रतिमाममेरुमथत्राऽवश्य परीक्षा सङ्घ,
 ग्राहा तत्र परीक्षैर् नियमत पृष्ठाऽर्थशुद्ध्यादिकम् ।
 गाला येऽत्र भवेयुरुन्नततयोत्तीर्णा सदाऽऽगन्तुका-
 स्तेषा देयमुपायन समुचित मोत्साहनार्थं पुन ॥७२॥

परिक्षा और पान्तिविक ।

भावार्थ—छात्रों की साप्ताहिक या मासिक परीक्षा सदा होने रहना चाहिये, जिसमें शुद्ध उच्चारण शुद्धार्थ भावार्थ और तापर्य आदि की जाँच की जाय, और अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुए छात्रों को तथा हमेशा हाजिर रहनेवालों को उसाह बढ़ाने के लिये यथायोग्य पारि-
 तोषिक देना चाहिये ॥७२॥

धार्मिकशिक्षणपुस्तकमाला ।

रम्या नीतिरथा महान्प्रचरितान्याचारगर्माणि वा,
 तत्र यत्र सपुक्तिक सरलता रीत्या निवृद्ध भवेत् ।

भाष्य तादृशपुस्तकैरभिनवैः सद्धर्मशिक्षोचितै-

निर्मेषानि च तानि पण्डितवरैः सेवार्थिभिः सेवकैः ॥७३॥

धार्मिक शिक्षा के लिये पुस्तकें ।

भावार्थ—जिनमें उत्तमोत्तम नीति की कथाएँ और सदाचार पूर्ण आदर्श पुरुषों के चरित्र हों, धर्म के तत्व युक्ति पूर्वक सरलतासे वर्णन किये गये हों, ऐसी छात्रजीवन को आदर्श बनानेवागी पुस्तकें धार्मिक शिक्षा के योग्य होती हैं, उक्त प्रकार की पुस्तकें यदि न हों तो सेवार्थी विद्वानों और लेखकों को तयार करना चाहिये ॥७३॥

दशमपरिच्छेदः ।

रोगिमेवा ।

कश्चिन्नास्त्युपचार को निजगृहे यस्यात्ति रोगोद्भवे,

स्याद्गृहस्तस्तरणोऽपि वा स हृपलो वैश्यो द्विजः क्षत्रियः ।

यत्त्वा त निजगान्धर्व मुमनसा सेवा विधेया स्वयं,

पथ्याऽन्नौषादानभिष्टवचनाऽभ्यर्णाऽऽसनाऽभ्यङ्गनैः ॥७४॥

रोगियाकी सेवा ।

भावार्थ—जिसके घरमें रोग या दुःसके समय पारिचर्या करने वाला कोई नहीं है वह रोग या दुःससे पीडित मनुष्य वृद्ध हो या तरुण, ब्राह्मण हो या शूद्र, वैश्य हो या क्षत्रिय, सबको अपना भार्द समस्त मिष्टवचनपूर्वक पथ्यभोजन तथा योग्य औषध देकर शान्ति

अच्छा परिणाम न हाने पर शिक्षा की निष्फलता ।

भावार्थ—निस धार्मिक शिक्षा से विद्यार्थियों का जीवन धार्मिक दृढ़ श्रद्धावान् और साध्विन न बने उस धार्मिक शिक्षा से क्या लाभ वह चिन्तामणि मन किम कामना निम से मन की इच्छा पूर्ण न हो, उस रूपरत में क्या लाभ निस से त्रिष्टितारूप दुष्कर्म नष्ट न हो, अज्ञान धार्मिक शिक्षा पेशी चाहिये जिससे ध्यान धर्मश्रद्धा आँ और सन्तुष्टि बने ॥७१॥

परीक्षापायन ।

सप्ताह प्रातेमासमेरुमथवाऽवश्य परीक्षा सकृद्,
प्राणा तत्र परीक्षकै नियमत पृष्टाऽर्थशुद्ध्यादिकम् ।
गाला येऽत्र भवेयुस्त्रततयोत्तीर्णा सदाऽऽगन्तुका-
स्तेषा देयमुपायन समुचित प्रोत्साहनार्थ पुन. ॥७२॥

परिक्षा और पारितोषिक ।

भावार्थ—छात्रों की साप्ताहिक या मासिक परीक्षा सदा होने रहना चाहिये, जिसमें शुद्ध उच्चारण शब्दार्थ भावाथ और तापर्य आदि की जाँच की जाय, और अच्छे नम्वरों में उत्तीर्ण हुए छात्रों को तथा हमेशा हाजिर रहनेवालोंको उसाह बढ़ाने के लिये यथायोग्य पारितोषिक देना चाहिये ॥७२॥

धार्मिकशिक्षणपुस्तकमाला ।

रम्या नीतिरथा महात्मचारितान्याचारगर्भाणि वा,
तत्र यत्र समुक्तिक सरलता रीत्या निबद्ध भवेत् ।

श्रीमानोंको औपधालय स्थापन करना चाहिये, तथा उत्तमचरित्रवाले साधारण सज्जनों को भी चाहिये कि वे रोगियोंकी सेवा सुश्रूषा करें तथा आपत्राण्यके यत्नवादि कार्यमें भाग लेकर उत्तमसेवाका परिचय दें ॥ ७६ ॥

विकलाङ्गिसेवा ।

येऽन्या. पामरपङ्गुमृरुत्राधिरा दुःख पर भुञ्जते,
तेषां शिल्पकलादिशिक्षणपद विद्यालय स्थापयेत् ।

ये योग्या न च शिक्षणे हितकरे ये रक्तपित्तादिता-
स्तेषां रक्षणहेतवे 'सुहृदयै' स्थाप्यो निवासालय ॥७७॥

अपागोंकी सेवा ।

भावार्थ—जो अन्ये लड़े लगे बहिरे गृहे आदि अपाग दुःखसे पीडित हैं उनको शिल्पकला आदि मिलाने निमित्त विद्यालय गोलना चाहिये, तथा बुद्धिहीन मदतासे या अन्य कारणसे हितकारी शिक्षा पानेके योग्य नहीं है अथवा रक्तपित्तादि रोगोंसे पीडित है उनकी रक्षा के लिये सुहृदय पुस्तकोंको कगाटराना स्थापन करना चाहिये ॥७७॥

अपाङ्गमेवाफलम् ।

सम्पूर्णाऽवयवेन्द्रियाणि ग्रहला सम्पच्चिर जीवन,
यच्चारोग्यसुख बल च विपुल प्राप्त त्वया साम्प्रतम् ।

जानीहि त्वमपाङ्गिना कर्णया सेवा कृता या पुरा,
तस्या एव फलानि तानि कुरु तत्तामेव पुण्यप्रदाम् ॥७८॥

उपत्र रग्ना चात्रिये, तथा पासम बटरर तैग्मर्दन आदि अनेक
उपायोद्वारा हृदय मे रोगीनी सेवा करना चात्रिये ॥ ७४ ॥

आराग्यरथा ।

जायन्तेऽभुचिवन्नुवृद्धिकरणे भुद्रा भृश जतवो,
प्रत्याराग्यमिमे मनुष्यवसतौ कुर्वन्ति रोगोद्भ्रम् ।
त्रोभ्या भ्रतजनास्तथा हितधिया स्वारोग्यरक्षाकृते,
ग्रामादौ न मलादिकञ्चग्भर विस्नारयेयुर्यथा ॥७५॥

आराग्य रथा ।

भावार्थ—इद मनुष्य अपने घरों या गलियोंमें सटी गली
वस्तुओं टाकर गन्दगी बनाते हैं, इससे टॉस मटर आदि अनेक
ग्रन्थक छटि २ असह्य जंतु उपत्र होकर बसतीमें अनेक रोग
उपत्र करते हैं, आरोग्य नियमसे अनभिन्न उन मनुष्योंको स्वास्थ्य-
रथा के त्रिये प्रेमपूरक समझाना चात्रिये जिमने ग्राम और नगरमें मैग
कृटा ककट आदि नहीं बन्ने पावें ॥ ७५ ॥

राग्यालय ।

ग्रामे वा नगरे न यत्र सुलभ रोगोपचारौपथ,
सस्थाप्य करणाधियाऽत्र वसतौ राग्यालय श्रीमता ।
वैयावृष्य विधानतो गदवता तस्य व्यवस्थाऽऽदित ,
सामान्यैरपि सज्जनै सुचरितै सेवा विधेया शुभा ॥७६॥

चिकित्साग्य (औषधालय)

भावार्थ—जिस ग्राम या नगरमें रोग दूर करनेके लिय शुद्ध
औषधि सर्वसाधारणकी सुगमतासे नहीं मित्र सरती हो, उस बसतीमें

निरुधमिताकारणाना निवृत्ति ।

ईदृन्ते बहुल धन च सहसा श्रूतेन केचित्परे,

देवाराधनमन्त्रतन्त्रविधिना स्वर्णादिसिद्ध्याऽपरे ।

ते सर्वेऽप्यलसा निरुधमतया नश्यन्ति दारिद्र्यतो,

गोभ्यास्ते हि भवेयुरुधमपरास्त्यक्त्वा निरुक्तभ्रमम् ॥८०॥

निरुधमताके कारणोंकी निवृत्ति ।

भावार्थ—कितनेही लोग जूए या सड़ेसे एकदम अधिक धन प्राप्त करना चाहते हैं, कई एक देवताओंको प्रसन्न कर अथवा मन्त्र तन्त्रका साधन कर-धनवान् बनना चाहते हैं और कितनेही सोना आदिकी सिद्धि अर्थात् कीमिया करके दारिद्र्यता दूर करनेमें प्रयत्नशील हैं, ये सब निरुधमी गाठका द्रव्य खोकर दारिद्र्यदुःखका अनुभव करनेवाले हैं, सहस्य पुरषोंको उपदेशद्वारा इनका उक्त भ्रम दूरकर उधमी बनाने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये ॥ ८० ॥

निरुधमानामुधमपदारोपणम् ।

येषा नास्ति सद्दुग्धमो न च धन निर्वाहयोग्य गृहे,

याचन्ते गृहिणोऽपि ते विधिहता दातुः सकाशे धनम् ।

नैभ्यो देहिधन यतः पुनरपि स्यात्तादृशी तदृशा,

किन्तूद्योगपरायणोश्च कुरु तान् यन्निर्वहेषुः स्वयम् ॥८१॥

निरुधमियाँको उधममें लगाना ।

भावार्थ—जिनके घरम निर्वाह योग्य धन नहीं तथा उत्तम धन भी नहीं ऐसे लोग कुटुम्बवाले होकर भी दुर्भाग्यवश दाताओं के

अपाङ्गकी सेवाका फल ।

भावार्थ—हे मानव ! इस समय जो तुझे सम्पूर्ण ओर सुन्दर शरीरके अवयव, सुघट पाचों इन्द्रियों, विपुल धनसम्पत्ति, दीर्घ आयु, नीरोगताका सुख, शारीरिक मानसिक तथा वाचनिक यथेष्ट बन्ध आदि प्राप्त हुए हैं उन्हे पूर्वजन्ममें करणापूर्वक कीगई अपाङ्गसेवाका फल समझ । यदि तुझे औरभी सुखकी इच्छा है तो परमपुण्यदायिनी इस अपाङ्गसेवाको अङ्गीकार कर ॥ ७८ ॥

एकादशपरिच्छेद ।

निरुधमितात्मवरागस्य निवारणम् ।

श्रीमान्तोऽपि निरुधमा यदि तदा दीना भवन्ति क्रमात्,

सामान्यस्य तु का कथा व्यवहृतौ रोगस्ततोऽय महान् ।

दारिद्र्योपहता बुभुक्षिततथा कुर्वन्ति पाप न किं ?

रोगस्याऽस्य निवारणे मुकृतिभिर्यत्नो विधेयस्तत ॥७९॥

निरुधमत्तारूप रागका निवारण ।

भावार्थ—साधारण मनुष्यकी तो बातही क्या श्रीमान् पुरुष भी उद्योगहीन होनेमें धीरे २ दरिद्र हो जाते हैं, वास्तवमें यह निरुधोग व्यवहारमें बड़ा भारी रोग माना गया है, दरिद्रतासे पीड़ित मनुष्य भूख के मारे क्या क्या पाप नहीं करते ? अत एव इस निरुधमत्तारूप रोगको दूर करनेके लिये योग्य परिश्रम करना चाहिये ॥ ७९ ॥

श्रमजीवियों की सेवा ।

भावार्थ—जो श्रमजीवी शरीर की परवाह न करे मिल आदि
 रस्तानों में बड़े परिश्रम में रातदिन काम करते हैं उनको अपने
 दुग्धपालन निमित्त उचित मजूरी दनी चाहिये, जिन की मर्यादा से
 अधिक स्वास्थ्य को हानि पहुचानेवाग श्रम करना पड़ता हो अथवा
 कोई श्रयाचार होता हो तो उनकी सहायता करना मनुष्यमात्र
 कर्तव्य है ॥ ८३ ॥

कर्मधर्मद्वर्त्तनशिक्षणम् ।

एते कर्मकरा निवृत्तिसमये सप्ताहसप्ताहके,
 व्याख्यानानि च शिष्या बुधवरैर्नो यास्तथा बोधके ।
 कुर्युर्नैव परस्परेण कलह नैवापि सार्द्धे परै-
 र्भूतादिव्यसन व्यय च विफल पान सुरायास्तथा ॥८४॥

मजूरी की मददताय की शिक्षा ।

भावार्थ—विद्वानोंको उचित है कि मजूरी को अन्तःकरण के समय
 तिसप्ताह व्याख्यान देकर अथवा सिखा पढानर उनमें दृढनी योग्यता
 प्रत्य उपन करे कि वे आपस में या दूसरों के साथ कलहन
 करने पावे ओर जूआ मदिरापान आदि तथा फिजूलगर्चा में मुँह
 डले ॥ ८४ ॥

निकट याचना करते फिरते हैं, ऐसी स्थिति में ड्रव्य तौ से थोड़ा सफ़ट तो निवारण हो सकता है, परंतु ऐसा करनेमें उनकी आप्त निगट जायगी और वहीं नशा बनी रहेगी, अतः उन्हें ड्रव्य न देकर तेमें उद्योग में लगानेना चाहिये जिस में वे स्वयं अपना निगट कर सकें ॥ ८१ ॥

कृषिकारसेवा ।

ये कुर्वन्ति परिश्रमेण सतत कृष्यादिर्कार्यं निज,
धान्यं जीवनसाधनं जनपदे संपूरयन्ति स्वयम् ।
तेषामाक्रमणं भवेत्तदि नृपाद् न्यापारिवर्गान् पुना-
रक्ष्यास्तेऽपठितास्तदा कृषिररासेयाथिभिः सज्जनैः ॥८२॥

किसानों की सेवा ।

भावार्थ—जो किसान शीत उष्ण आर वषा का घोर कष्ट सहकर शारीरिक श्रमद्वारा अपना कृषिकार्य करते हैं और जीवन का साधन अन्न उपन्न कर देशमें सुख की नाद सुखोंतें हैं, उन अनदाता किसानों पर राजा अथवा व्यापारी वग अत्याचार करें तो उदार मेयाथि पुष्टियों का कर्त्तव्य है कि वे शान्तिपूर्वक अत्याचारको रोकें और उनको पदा लिखा कर शिथिल बनावे ॥ ८२ ॥

कर्मकरसेवा ।

येऽनाहत्यं शरीरसंस्कृतिविधिं यन्त्रालयादिस्थले,
कार्यं कर्मकरा श्रमेण महता कुर्वन्ति रात्रिन्दिवम् ।
तेषां स्यात् स्वकुटुम्बपोषणमल तावद्भृतिं दापय-
न्नात्यन्ताक्रमणं श्रमाधिकतया रक्ष्यास्तथा तेषांखिला ॥८३॥

श्रमजीविया की सेवा ।

भावार्थ—जो श्रमजीवी शरीर की परवाह न करे मित्र आदि कारग्यानो में बड़े परिश्रम से रातदिन काम करते हैं उनको अपने कुटुम्बपात्रन निमित्त उचित मजूरी देनी चाहिये, जिन को मर्यादा में अधिक स्वास्थ्य को हानि पहुचानेवाला श्रम करना पड़ता हो अथवा और कोई अयाचार होता हो तो उनकी सहायता करना मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है ॥ ८३ ॥

कर्मकरमद्भक्तनशिक्षणम् ।

एते कर्मकरा निवृत्तिसमये सप्ताहसप्ताहके,

व्याग्यानेन च शिक्षया युध्वरैर्गोध्यास्तथा बोधकैः ।

कुर्युर्नैव परस्परेण कलह नैवापि सार्द्धं परै-

र्षुतादिव्यसन व्यय च विफलं पान सुरायास्तथा ॥८४॥

मजूरी की मद्भक्तान की शिक्षा ।

भावार्थ—विद्वानोंको उचित है कि मजूरी को अवकाश के समय प्रतिसप्ताह व्याग्यान देकर अथवा सिरा पढाकर उनमें इतनी योग्यता अत्रत्य उपन्न करदें कि वे आपस में या दूसरों के साथ कटहन करने पात्र और जूआ मद्रिरापान आदि तथा फिजूलगर्चा से मुँह मोड लें ॥ ८४ ॥

द्वादशपरिच्छेद ।

विधयामेवा ।

यामा कोऽपि न विप्रते निजकुत्रे पोष्योऽथवा पोष-
स्तादृश्या विधवाश्रमं हि विधवा अर्हन्ति सरक्षणम् ।
कर्त्तव्यं विधवाचितं च सरला निर्वाहयोग्या यत्र,
सेवा धार्मिकतत्त्वयोऽसहिता तत्रार्थतः शिक्षयेत् ॥ ८५ ॥

विधवाआश्री सेवा ।

भावार्थ—जिन विधवाओं के कुटुम्ब में न तो कोई पालन करने योग्य सत्तान है और न कोई पोषण करनेवाला पुरुष ही है ऐसी विधवाएँ विधवाश्रम में सुरक्षित रहने योग्य हैं । वहाँ पर इनकी विधवाओंसे योग्य कृत्य और घर बँटे निवाह के लिये मीनापिरोना नसीदा कर्मा आदि की शिक्षा देनी चाहिये, तथा धार्मिकान के साथ-साथ विप्र मेवा के परित्र भाव इनके हृदय में अङ्कुरित करने चाहिये ॥ ८५ ॥

विधवाऽऽजीविकाप्रबन्ध ।

पुत्रादिप्रतिबन्धतो निजगृहे त्यक्तुं न सन्ति क्षमा-
या दैव्यान्निजमन्तरेपि गृहे कर्तुं न रक्षामलम् ।
तासां कोऽपि कुले भवेद्यदि धनी तेन व्यवस्थाप्यता,
नो चेन्मण्डलसज्जनैः समुचितः कार्यं भवन्ध स्वयम् ॥ ८६ ॥

त्रिधवाओंकी आजोत्रिका का प्रबन्ध ।

भावार्थ—जो त्रिधवाएँ पुत्रादि के बचन से अपने घर को नहीं छोड़मन्त्री ओर द्रव्य के अभाव से घग्म बठी रहकर अपनी सत्तान की रक्षा भी नहीं करसकती, ऐसी स्थिति में कुटुम्ब के धनमान् पुरपा से उनकी भोजनादि व्यवस्था करनी चाहिये यदि उक्त मापन न होतो सेवामिति के सञ्चना को उचित है कि वे इन अनाथ-विधवाओंका उचित प्रबन्ध करें ॥ ८६ ॥

त्रिधवाना नियमनमर्यादा ।

स्वान्तन्यान्न भवेयुरुद्धतरा नाचारहीना यथा,

तावन्नेतृजनैश्च तन्नियमन कार्य यदावश्यकम् ।

याः सत्यो विधवाः स्वभावसरलाः स्वयैर्जनैर्निर्देयैः,

पीड्यन्ते किल पीडनात् सपदि ता मोक्ष्याः स्वयसेवकैः ॥८७॥

विधवाओंपर अकुश की मर्यादा ।

भावार्थ—त्रिधवाएँ स्वतंत्र होकर स्वच्छन्द तथा आचारहीन न बनजाँय इसलिये उनपर कुटुम्ब के नायकोंका उचित अङ्गुश रहना परमावश्यक है, जो सुशील सरलस्वभाववाली त्रिधवाएँ कुटुम्ब के निर्देयिलोगों से विना प्राण सतायी जाती हैं स्वयसेवकों का कर्त्तव्य है कि उन निरपराधिनी अबलाओं को उक्त आपत्ति से छुटावें ॥ ८७ ॥

पूचना तथा माटे उचना से पेय वधात चाहिये । निद्राने और पदि
नने के मंत्र उचित रूपका निम्नोक्त साध सुखे कपट बद्ध
देना तथा भोजनान्ति का उचित व्यवस्था करना अत्यावश्यक है और
उन्हे मामने रमार्ग तथा आममें शांति उत्पन्न करनेकी धार्मिक
धुम्बक पटना चाहिये जिससे उन क परिमाण निर्मा बने रह ॥१॥

बृद्धनामानुबुल्यमम्पादनम् ।

चित्तैषा यदि भाति काऽपि हृदये युक्त्या द्रुत ता हरेद् ,
रोग काऽपि भवेत्तदा नु धिपजा योग्योपध योजयेत् ।
वैषम्य भङ्गतो भवेद् यदि तदा सद्योधविज्ञापनै ,
क्रोत्रेपविपादलोभहरणात् माम्य च सम्पादयेत् ॥२॥

बुद्धा क अनुकूल आचरण करना ।

भावार्थ—बुद्ध मनुष्यों के चित्तमें किसी प्रकार की चिन्ता
रहती हो तो युक्तियाद्वारा उसको दूर करना चाहिये, रोग उपन्न होने
पर वैद्यकी सम्मति में योग्य औषध की योजनका करना तथा प्रकृति में
किसी प्रकार का विकार उपन्न होनेपर उत्तम शिक्षा और उपदेशद्वारा
मोघ द्वेष विषाद और रोम का परिहार कर समता उपन्न करना
चाहिये ॥ ५२ ॥

बृद्धाना ममाधिमरणसम्पादनम् ॥

यत्रैषा मरण विभाति निकटे दृग्गता यरोगोद्भवात् ,
प्रत्याग्यानसमाधिभावजननैराराधना कारयेत् ।

चित्त शान्तिपरायण भगवतो ध्याने निमग्नं भवेत्,
 स्यादेषा हि यथा समाधिमरण यत्न विद्वयात्तथा ॥९३॥

अन्तिम अवस्था में वृद्धोंका समाधिमरण ।

भावार्थ—अमाय रोग उत्पन्न होनेपर जिन वृद्ध लोगोंकी मृत्यु निकट प्रतीत होने लगे उनको सम्पूर्ण वस्तुआका त्याग करवाना चाहिये, तथा शान्ति उत्पन्न कर धर्म की आराधना करवाना चाहिये और ऐसा यत्न करना उचित है जिस से उनका चित्त शान्तिरसमें लीन होकर भगवान् के ध्यान में लगा रहे और समाधिपूर्वक मरण हो ॥९३॥

चतुर्दश. परिच्छेदः ।

पशुरक्षणम् ॥

यस्या दुग्धघृतादिना नरतनु पोषुष्यते सर्वथा,
 वाणिज्य कृषिकर्मभारवहनं यज्जातिमालम्बते ।
 सा रक्षया पशुजातिरुत्तमजनैः कर्त्तव्यसेवाधिया,
 हिंसातो बलितोऽतिभारभरणात् क्रौर्याद् भृश ताडनात् ॥०४॥

पशुरक्षा ।

भावार्थ—जिन के दूध और घी से मनुष्यका शरीर परिपुष्ट होता है, जो जालि वाणिज्य कृषि और भार लाने के हैं। मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है कि मेषबुद्धि में ऐसी

दौर्बल्ये गदसभये पशुपती रक्षेत् पशु यानतो-

भाव्य तादृशशासनैर्नरपते राज्ये हितार्थं पशोः ॥ ९६ ॥

न म्युस्तादृशशासनानि विपये यस्मिन् दया भावत-

स्तत्रोत्पाद्य दयात्रयं दृढतरं नव्यानि निर्मापयेत् ।

पालयन्ते न च तानि सन्त्यपि जनैः राज्याऽव्यवस्थादित-

स्तेषामादरपूर्वपाठनविधौ कुर्यात् प्रयत्नं शुभम् ॥ ९७ ॥

पशुश्रावणं नियमः ।

भावार्थ—उत्तम गजा के राज्य में पशुरक्षा निमित्त ऐसे नियम होने चाहिये कि कोई भी माटी आदि में मर्यादा से अशुभ भी अधिक भार न लाद सके, वृद्ध अथवा बलहीन बैल बगीचे को जोतने न पावे तथा दुर्बल या रोगी पशु की उसका स्वामी यत्नपूर्वक रक्षा करे । निमन्त्रण में पशुरक्षा के ऐसे नियम न हो तो वहाँ के गैरगाम दया-भावात्पन्न नर नवीन और मुद्दत नियम बनवाने चाहिये, जिस देश में नियम तो बने हों किन्तु राज्य की अव्यवस्था आदि कारणोंसे लोग उनकी पाठना न करते हों तो ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे उन नियमों का आदरपूर्वक पाठन होता रहे ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

पशुपातवृद्धपशुरक्षणम् ।

नो धावत्तृणभक्षकाः क्षितितले पोता' पशूना स्वयं,

तावत्ते निजमातुरेव पयसा पोष्याः पशुस्वामिभिः ।

विमृश्यो न विघातकाय विगते स्वार्थेऽपि देयं तृण-

मित्थं शासनपद्धतिं नृपगुरुद्वारा च निर्मापयेत् ॥९८॥

वच्चे ओग वृत् पशुआंकी रभा ।

भावार्थ—बच्चे पात्र आदि पशुओं के बच्चे जनतक स्वयं जमीनपर ही बस खाकर अपना पेट न भरसके तबतक पशुस्वामिया को उचित है कि जो बच्चा की माता का दूध पिनाकर ही पोषण करे अर्थात् उनका अपनी माता से प्रियोग न करे, तथा अपना साथ मित्र होनासेपर जोद भा मनुष्य पशुओं को कम्बर्द बर्गह के हाथ बेचने न पात्र, आर वृद्ध तथा बलहीन पशुआंकी उनके स्वामी समय पर घास पानी देते रहें आवारा न फिरने दें, ऐसा नियम रात्रा से अथवा रात्रगुम् मे बनवाव ॥ ९८ ॥

पश्वालयव्यवस्था ।

वृद्धा दुर्बलरोगिण क्षतहता निर्नाथका व्यङ्गका,
नि शक्ता. पशवो बुभुक्षितनरा नेवा सुपश्वान्धये ।
भैषज्येन च रोगिणा क्षतवता कुर्यात् स्वयं सेवन,
मन्येषामपि रक्षणाय तनुयात्तत्र व्यवस्था वराम् ॥१०९॥

पिंजरापोल की व्यवस्था ।

भावार्थ—जो पशु वृद्ध दुबल रोगी या जम्बमी होगये हों आवारा फिरनेवाले अशक्त अपाङ्ग या भूखे मरनेवाले हो ऐसे पशुओं को पिंजरापोल में लेनाना चाहिये और वहापर उन रोगी या जम्बमी पशुओं की दवा मरहमपरीद्वारा स्वयं सेवा करे आर दूसरा से भी करावे, इसी प्रकार अन्य पशुओं की रक्षा भी योग्य प्रवृत्त करना

पचदश परिच्छेदः ।

ज्ञातिमत्याऽऽ-तग्भेदपरिहार ।

तुल्याचारकुटुम्बसहितितया ज्ञातिः समारभ्यते,

विस्तीर्णा हि यथा यथा भवति सा तस्या बल स्यात्तथा ।
सा भेदैर्यदि खण्डिता बहुविधैः क्लेशावहा स्यात्तदा,
नस्मादान्तर भेद खेदहरणे यत्नो विधेयः परः ॥१००॥

जाति के अन्तर्गत भेदका परिहार ।

भावार्थ—समान आचारविचार वाले तथा समान रीति रिवाज वाले कुटुम्बों के मिलने से जाति की रचना होती है ज्यों ज्यों यह कुटुम्बमभूत बढ़ताजाता है त्यों त्यों उसका बल भी बढ़ताजाता है अर्थात् जाति चित्तनी विशाल होती है उतने अंशमें वह बलिष्ठ गिनी-जाती है तथा अपनी और परकी रक्षा करने में समर्थ होती है, किन्तु जब उमरा अग अनेक प्रकार के भेदोंसे खण्डित होजाता है तब वह बर्हीन होकर अनेक दु सों का अनुभव करती है इसलिये जातिके अन्तर्गत भेद दूर करने का पूर्ण उद्योग करना चाहिये ॥१००॥

ज्ञातिनायकव्यवस्था ।

नेत्रत्वं न कुलक्रमागतमल किन्तूत्तमै सद्व्युणै-

रन्याय यदि तन्वतेऽल्पमपि ये किं तै फल नापकैः ।

स्वार्थ साधयितु मनागपि वरानिष्ट वितन्वन्ति ये,

तन्नेत्रत्वविवर्त्तनेन जनता सेवा समापयते ॥१०१॥

बृद्धविवाह आदि कुप्रथाओं का परित्यक्त ।

भावार्थ—एक स्त्री के दो पति होना वास्तव में अत्याय और
अमंगल - पुण्या की भी उचित है कि एक पनीत्रत धारण कर विशेष
कारण बिना दूसरी स्त्री से पाणि ग्रहण न करे और बुद्धोपम या अथ
अपन म विवाह कर वैचारी जनजाति पर अत्याचार न करें, निम
जाति में बृद्धविवाह या अनुचित बहुविवाह होते हैं उभ जाति के हितपा
विद्वाना का कर्त्तव्य है कि वे पूण आन्दोलन कर उन कुप्रथाओं का
समूह नाश करे और जातिमत्ता का परित्यक्त ॥ १०४ ॥

षोडश परिच्छेद ॥

जन्मभूमि ।

यदेशान्नजलानिलै शुभतरैः पुष्टिं गता ते तनु-
स्तेऽशोच्यतेऽस्तु ते धनमनस्तन्वर्षणसर्वथा ।
या भूमिर्जननीव पालनपरा स्वर्गादिपि श्रेयसी,
तस्या स्वल्पमनिष्टचिन्तनमदो ! तज्जस्य पापावहम् ॥ १०५ ॥
स्वदश सेवा ।

भावार्थ—जिस देश के उत्तम अन्न जल और वायु से पुष्टार
शरीर पुष्ट हुआ है पुष्टाग कर्त्तव्य है कि उस देशकी उन्नति के लिये
अपना तन मन और धन अर्पण करे दो, जो भूमि माता के समान

पालन पोषण करनेवागी है तथा स्वर्ग से भी अविक्र सुख देनेवागी है उस भाग्यमाता का निश्चित्मात्र बुरा चिन्तन करना उस की सन्तान के लिये महापाप का कारण है ॥ १०५ ॥

जनपदजागरिका ।

को दुःखी सुखिनश्च के जनपदे चिन्त्य तदेतत् सदा,
स्यादुःख यदि कस्यचित् किमपि तद्धन्यान्निजैः साधनैः।
दृतादिव्यसनेषु कोऽपि पतितश्चेत् सत्पथे त नषेद्,
रीज स्यात् कलदस्थ चेज्जागति तयुक्तं दद्वेत् सर्वथा १०६

। स्वदेशका हितचिन्तन ।

भावार्थ—देश म नोन दुःखी है ओर कोन सुखी है सहृदय पुरुष का सदा ऐसा विचार करना चाहिये यदि कोई दुःखी प्रतीत हो और अपने पास उसके दुःख दूर करने का साधन भी हो तो उचित है कि उसका दुःख तुरन्त दूर करे, कोई मनुष्य जूआ चोरी आदि दुर्व्यसनों में फसा हो सज्जन पुरुषों का कर्त्तव्य है कि प्रयत्न कर उसे उत्तम मार्ग पर लेआवे, तथा देश समाज या जाति में कलह मचा हो सुशुक्तियोंद्वारा उसका मूल कारण मिटाकर शान्ति स्थापित करें ॥ १०६ ॥

स्वदेश्याचारपालनम् ।

देश स्व न कदाऽपि विस्मरति यो गत्वाऽपि देशान्तर,
जह्यान्नो निजदेशवेपरचना देशाभिमानी जनः ।
स्माचार विजहाति चञ्चलमना प्राच्याऽऽर्यजात्यर्चित,
देशद्रोहकरोऽधमः स पुरुषो धर्माधिकाराच्च्युतः ॥ १०७ ॥

स्वदेश-आचार की पाठना ।

भावार्थ—जा मनुष्य विदेश में जाकर भी अपनी जन्मभूमि को नहीं नहीं भूत तथा अपने देश का पहनाव रहन सहन और आचार विचार को नहीं छोड़ते हैं वेही देशाभिमान हैं, चच मनरागे पुरुष विदेशम जाकर प्राचीन भारतीयआचार और देशआचार को छोड़ दत न के नगदोही और अरम हैं उन को धर्म श्रितिकार से पतिम समझना चाहिये ॥ १०७ ॥

स्वदेशयवस्तुपभाग ।

देशोद्योगविवर्द्धनाय यपुपथारोगवरसा कृते,
दीनाना निजनेजिना करुणधा दारिद्र्यमिच्छित्तये ।
युज्यन्ते वसनानि भोज्यमखिल भोग्यानि यस्तून्यपि,
देशान्धेर विभूषणान्यमल्यो स्त्रीपुसयो सर्वाथा ॥१०८॥

स्वदेशी वस्तु का उपयोग ।

भावार्थ—स्वदेश के उद्योग को ऊत्तेना देने के लिये शर्मा की आरोग्यरक्षा के लिये तथा अपने देश के गरिब मनुष्योंपर करुणा कर उनका दारिद्र्य दूर करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को पहिनने के सन वस्त्र, खाने पीने की सम्पूर्ण सामग्री तथा स्त्री पुरुष के लिये आभूषण इत्यादि समस्त उपभोगमें जानेवाली वस्तुएँ स्वदेश की बनी हुई होनी चाहिये और उन्हीं को काम मलना मनुष्यमात्र का कर्तव्य है ॥ १०८ ॥

देशोपद्रवनाशनम् ।

देश. स्वान्निरूपद्रवो नृपतिना श्रेष्ठेन सरभित-

स्तद्गर्द्धमसमाजरक्षणमथो विज्ञानशुद्धिस्तदा ।

देशे कोऽपि समुद्भवेदभिभवो पाषोऽथवाऽभ्यन्तर-

स्तन्नाशे यतितव्यमुत्तमजनैर्धर्मादिरक्षाकृते ॥१००॥

देश के उपद्रवना नाश ।

भावार्थ--जब देश उत्तम राजा से सुगुणित होकर उपद्रवरहित होना है तब देश में धर्म और समाज की रक्षा ही नहीं बकि विज्ञान की पूर्ण वृद्धि होती है, देश में यदि कोई बाह्य या अभ्यन्तर उपद्रव सताने लगे तो उद्गारपुरषा का कर्त्तव्य है कि उन उपद्रवना नाशक, धर्म और समाज की रक्षा करें ॥१०१॥

म्यचक्रपरचक्रता देशरक्षणम् ।

देशस्याऽऽक्रमण यदा स्वपरयोश्चक्रेण सम्पश्यते,

स्वास्थ्य नश्यति जायते क्षतिततिर्द्रव्यादिहान्या भृशम् ।

साहाय्य करणीयमत्र समये तदेशयास्त्वय्यकैः,

सर्वेरेव जनैर्धनेन वपुषा जुद्धया तथा सेवया ॥ ११० ॥

म्यचक्र और परचक्र से देश की रक्षा ।

भावार्थ--जब स्वचक्र या परचक्रद्वारा देशपर आक्रमण होता हो, प्रजाका स्वास्थ्य विगटता हो, द्रव्य आदि की हानि के साथ साथ अनेक प्रकारकी हानि होती हो अर्थात् मरी ज्वर हैजा आदि रोगोंका उद्भव होना हो तब समये तब देशवासी मनुष्यमानव का कर्त्तव्य है कि तब मन धन और सेवा द्वारा देश की रक्षणता करें ॥११०॥

अधिकारिणामुपद्रवनिवर्तनम् ।

ये राज्ञा निजदेशरक्षकतया योग्ये पदे स्थापिता,
स्युस्ते पापरभक्षका यदि नृपाऽमान्यादयोऽन्यापिन
ससाध्यैययत्न तदाऽखिलजनैस्तद्देशवास्तव्यमै,

कार्यं तत्परिवर्तनं विनयतो राज्ञे निरोधोत्तमै ॥१११॥

अधिकारियाय उपद्रव या निराकरण ।

भावार्थ—राजा ने विनयो अपने श्रेष्ठी रक्षानिमित्त कस
पद पर नियत किया है वे अधिकारी जोग यदि अन्यायी होकर प्रजा
रक्षक की जगह प्रजा भक्षक बनजायें तब श्रेष्ठीवासी उत्तम पुरुषों
कहाँ-य है कि सब एकमत हो राजा से विनय पूर्वक निवेदन करें
और उस अन्यायी अधिकारी को का परिवर्तन करावें ॥१११॥

आपत्कालीनसेवा ।

भूकम्पादिस्वैयकोपजनितापत्ति घटाचिन्धिजे,
देशे काऽपि समागता यदि महाऽऽनर्थकयसम्पादिनी ।
गत्वा तत्र सदैव साधनभरैरापद्रुताना तृणा,

साहाय्य समयोचित्तं सुखकरं कर्त्तव्यमर्थोदिभि ॥११२॥

आपत्ति क समय सेवा ।

भावार्थ—जब कभी अपने देश के किसी भाग में भूकम्प
अग्निफण्ट अतिवृष्टि प्लेग हैजा आदि प्रजा का संहार करनेवाला
दैनिक आपत्तिया उपस्थित हों उस अवसरपर स्वयंसेवक रक्षाके
साधन जुटाकर घटनास्थल पर पहुँचें और आपत्तिग्रस्त
मनुष्यों की समयानुसार सहायता करके उन्हें शान्ति और सुख
पहुँचावें ॥ ११२ ॥

द्वितीयखण्डः ।

प्रथमपरिच्छेदः ।

आत्मदृष्टिः ।

जगत्सेवायामात्मसेवा ।

एषोऽय समयो मनुष्यजनुषो लब्धु प्रकृष्ट फल,
तत्सेवैव निजात्मनश्च जगते निष्कामबुद्ध्या परा ।
केचित् कारणकार्यभावमनयोराहुस्तदेक मत,
सम्पूरुतच्चविचारणे तु जगतः सेवैव सेवात्मनः ॥११३॥

जगत्सेवामं आत्म सेवा ।

भावार्थ—देश की सेवा करनेके बाद मनुष्य जीवन का सर्वोच्च-
फल प्राप्त करनेका समय आता है । वह फल सेवा ही है । चाहे आत्म
सेवा हो अथवा निष्कामबुद्धि से ससार की सेवा हो । कोई कोई आम
सेवा और जगत्सेवा का परस्पर कार्यकारणभाव अर्थात् जगत्सेवा में आ-
त्मसेवा और आत्मसेवा से जगत्सेवा होती है ऐसा मानते हैं । किन्तु
असंगी स्वरूप पर विचार करने से माझम होता है कि जगत्सेवा
आत्मसेवा है और आत्मसेवा ही जगत्सेवा है ॥११३॥

जग-सेवा ।

कृप्या मेव न मा मन इर जगत्सेवा समुद्धारिणी,
 यद्वा य जगनो त्रिधाय परितः सेवा त्रिधेयात्मन ।
 मेतोद्धारमर्या मनाऽत्र जगत सा चेत्प्रवृत्त्यात्मिका,
 नैराश्यात्त च गाढयन्त्रजनिका न्यूना निवृत्त्या न सा १२८

मसार की सेवा ।

भावार्थ—चाहे आमसेवा करनेके बात बिध का उदार करने
 वाग समार की सेवा कगे अथवा मसार की सेवा करने के पक्षत
 आमसेवा करो दोनों ही समान हैं । यहा पर सेवा शब्द मे तापर्य
 भक्ति तथा का पनिष्ठ उन्नतिमे महायता पहुचाने का नई है किंतु
 समाज को दुःख मे छुटाने का है । यद्यपि यह सेवा प्रवृत्तिरूप है
 ता भी इस में निःशाम बुद्धि होने मे न तो यह गाढ-ईर्षयन्त्र का
 कारण है अरु न निवृत्ति-भाग से किसी प्रकार कम है । अथवा
 निःशामप्रवृत्ति भी निवृत्ति-ममान ही है ॥१२४॥

विश्वप्रेम ।

विश्वप्रेमनिबन्धनाय करुणा धर्मस्य रक्षाकृते,
 रागद्वेषनिवारणाय समता भावातिरोद्धार्य च ।
 मयस्वात्मसमानमेतदखिलं दुःखं सुखं वा जगद्-
 भुम्हे प्राणिगणं बुद्धुम्यसमं नक्तदिव भावय ॥१२५॥

विश्वप्रेम ।

भावार्थ—समस्त मसार के साथ प्रेम का बंधन राधने के लिए

न्यायार्थ को गवा के लिए, रागद्वेष का निवारण करने के लिए तथा समताभाव की सीढ़ी पर पात्र रखने के लिए मुख तथा दुःख र्म सम्पूर्ण गोरु को अपने समान समझो । तथा समस्त प्राणियों को अपने उट्टुधियों की तरह मानने की रात त्ति भावना करो ॥११५॥

विश्वप्रेमिण मर्धात्तमत्वम् ।

आत्मीय जडदेहमेव मनुते सर्वाधमो मानवः,
 पुत्राय मनुजोऽधमो निजकुल ग्राम पुनर्मयमः ।
 सोऽय मानव उत्तमो जनपद नैजान्मवन् मन्यते,
 यो विश्व निःखलं विशालहृदयः सर्वोत्तमोऽसौ नरः ॥११६॥

मत्र से उत्तम विश्वप्रेमी ।

भावार्थ—जो अपने स्थूल जट शरीर को ही अपना मानता है वह मनुष्य जन्म में भी अधम है । जो पुत्र स्त्री आदि अपने उट्टुधियों को अपना समझता है वह अधम है । अपने गाँववाग को अपना माननेवाग मनुष्य मयम तथा स्वदेश अर्थात् ज मभूमि को सदा अपने रूप माननेवाला उत्तम है । सर्वोत्तम मनुष्य वह है जिस के विशाल हृदय में मारा ससार निजस्व से प्रतिभासित हो रहा है ॥ ११६ ॥

चेतन्यदृष्ट्या जगन्निरीक्षणम् ।

दृष्ट्वा मोहयन् विहाय ममता स्वीये निजद्रा कुले,
 पश्य त्व निम्बिल जगद्धिततया चेतन्यदृष्ट्या सदा

वैराग्याभ्यास ।

भृश्या रमणानभाजनरमाससर्गदानादिभिः ,
सा वाचारविचारपालनमयाऽभ्यासो विधेयश्चिरम् ।
एव चेन्द्रियनिग्रहेण मनसो दान्ध्यात्मशान्त्या पर,
वैराग्य परिशीलनीयमुचितं वर्षं द्विवर्षाधिम् ॥ १२० ॥

वैराग्य का अभ्यास ।

भावार्थ—वैराग्य को बढ़ करने के लिये वर्ष दो वर्ष तक वैराग्य का अभ्यास करना चाहिये अर्थात् भूमिपर सोना, ऋग्ना मूत्रा भोजन करना तथा ज्ञी का समग नहीं होने देना चाहिये । इस प्रकार साधुजी जसा आचरण पालन कर्मतु हृत् इन्द्रिय का दमन और मन का निपट कर आमशांति पूर्वक वैराग्य का अभ्यास करना चाहिये ॥ १२० ॥

शास्त्राध्ययनम् ।

सा वाचारविचारप्रोजनक शास्त्र यथानुक्रम,
ज्ञानार्थं पठितव्यमादरधिया स्थित्वा समीपे गुरोः ।
तत्त्वज्ञानप्रिक्षिष्टशास्त्रनिबन्धाऽभ्यासोऽपि कार्यो मुदा,
सन्मार्गादिविनिश्चयाय सुधिया जिज्ञासुना श्रेयसे ॥ १२१ ॥

शास्त्र का अध्ययन ।

भावार्थ—मोक्ष की इच्छा रखनेवालों को साधुओं के आचार विचार का बोध करानेवाले शास्त्र का अनुक्रम से अभ्यास करना चाहिये । यह अभ्यास गुरु के समीप में रहकर समानपूर्वक होना

चाहिये । बुद्धिमान जिज्ञासुओं को आचारशास्त्र के साथ साथ सत्य भाग का विशेष निश्चय करने के लिये तथा आमकल्याण करने के लिये तत्त्वज्ञान के प्रतिपादकशास्त्रों का भी अभ्यास करना चाहिये ॥१२१॥

गुरुकृपा ।

त्रिधा सिद्धयति सद्गुरोः सुकृपया पीयूषमृषा द्रुत,
 गुर्वाज्ञावशवर्त्तितादिसुगुणैः सम्पाद्यते सा कृपा ।
 भक्त्या स्तार्पणरूपया त्वहंरहः कृत्वा च सेवा गुरोः,
 सम्पाद्या विनयेन सद्गुरुकृपा जिज्ञासुना श्रेयसे ॥१२०॥

गुरुकृपा ।

भावार्थ—अभ्यासमात्र से विद्या की प्राप्ति नहीं होती किन्तु मद्गुरु की अमृतमय कृपा से सहज ही विद्या की प्राप्ति होती है । और वह कृपा गुरु की आज्ञापालनादि सत्गुणा से सम्पादन की जाती है । अत एव जिज्ञासु को चाहिये कि विनयपूर्वक द्रव्यादि देकर तथा परमभक्ति से प्रतिदिन गुरु की सेवा कर के गुरु का अनुग्रह प्राप्त करे ॥ १२२ ॥

चैराग्यपरिपाकः ।

चैराग्य क्षणिक तु निष्कलमहो ! नो योगनिर्वाहक,
 भाव्यतेन मुनिष्ठितेन नियतं प्राप्तेन पक्कां दशाम् ।
 मत्सङ्गेन विरागधर्मकथया चैरान्तवासेन वा,
 म्नाध्यायेन मुचिन्तनेन तपसा कुर्याच्च तन्निष्ठितम् ॥

वैराग्य का परिष्कार ।

भावार्थ—वैराग्य यदि क्षणिक है तो निष्काम समझना चाहिये क्योंकि उममें समय का निर्वाह नहीं हो सका, इस लिये वैराग्य परिष्कार का चरममीमा को प्राप्त होना चाहिये । अतः मोक्षभिगपी संप्रुपा की मङ्गति करके वैराग्यवर्द्धन धमकथाओं को सुनकर तथा अज्ञान म रहकर शास्त्र स्वाध्याय आमन्यान तथा यथाशक्ति तद्द्वारा वैराग्य को परिष्कार बनाना चाहिये ॥ १२३ ॥

वैराग्यपरीक्षा ।

चित्त यस्य न चञ्चल विकृतिमद् दृष्ट्वाऽपि देवाङ्गना,
 भ्रुत्वा कष्टकृतुल्यं शत्रुवचन क्षुभ्येन्न यन्मानसम् ।
 धैर्यं मुञ्चति नो मनाग् बहुजनैर्यष्टथा च यस्ताडितो-
 ज्ञेया तत्परिपक्वता सहृदयैरेतैः शुभैर्लक्षणैः ॥ १२४ ॥

वैराग्य की परिक्षा ।

भावार्थ—सामान्य ली की तो बात ही क्या 'दे सुन्दर युवती ली को देखकर भी चित्त में विकार न होना, समान हृदयविदारक शत्रु के कठोर वचनों को सुनकर भी क्षोभ न होना, अनेक मनुष्यों से लाठीआदि द्वारा पीटेजानेपर बनीरहना, चित्त का चञ्चल न होना ये वैरागी के शुभ सहृदय पुरुषों को इन्हीं लक्षणों से है— चाहिये ॥ १२४ ॥

शिष्यलक्षणम् ।

नम्रः कोमलमानसोऽतिसरलो लज्जाविवेकान्वितो-
 निर्दम्भो निरहङ्कृतिर्निरलसः सौम्यः शशीव स्वयम् ।
 मद्भावात् मितभाषकः सुचरितः श्रद्धायुतो यो भवे-
 दौदासिन्यमुमुक्षुलक्षणपटुः शिष्यः स एवोत्तम ॥१२५॥

शिष्य के लक्षण ।

भावार्थ—परिष्क वैराग्य के साथ साथ जो शिष्य विनयवान्
 कोमल हृदयवाला मरलचित्त लज्जावान् और निरेकी है । झलरहित
 निरभिमानी आस्यहीन और चद्रसमान साम्य आवृत्तिवाला है, बुद्धि-
 मान् परिमित—भाषण करनेवाला सचरित्र अटल—धर्मश्रद्धावाला तथा
 उदासीनता आदि मुमुक्षु के लक्षणों से भूषित है उसे उत्तम—शिष्य
 समझना चाहिये ॥ १२५ ॥

गुरुलक्षणम् ।

योगीन्द्र श्रुतपारगः समरसाम्भोग्यौ निमग्नः सदा,
 शान्तिक्षान्तिनितान्तदान्तिनिपुणो धर्मैकनिष्ठारतः ।
 शिष्याणां श्रुभचित्तशुद्धिजनकः ससर्गमात्रेण यः,
 सोऽन्यास्तारयति स्वयं च तरति स्वार्थं विना सद्गुरुः ॥१२६॥

गुरुके लक्षण ।

भावार्थ—जो मुनीश्वर श्रुत के पारगामी है, और समतारसके
 समुद्र में सदा मग्न रहते है, शान्ति और क्षमा गुणसे विभूषित है,
 इन्द्रियों का दमन करते हैं तथा धर्मआचरण में लीन है, जिन

समर्पणमात्र से शिष्यों की मनीषा चित्तवृत्ति शुद्ध हो जाती है । ऐसे मन्त्रगुरु स्वयं समागसमुद्र से पार होते हैं और विना स्वार्थ के मन्त्र को हस्तान्मन नकर पार करते हैं ॥ १२६ ॥

सम्यग्धिनामाज्ञा ।

पुत्रान्निम्बजना कथाञ्चिद्रपि ते स्वार्थेन मोहेन वा,
 कुर्यान्ति प्रतिग्रन्धन यदि यमे नृयत्रिक्रया नोचिता ।
 तान विनाप्य मृदूपदेशरचनैः सन्तोष्य तन्मानस-
 माशीर्षादिपुर सरा नियमतो ग्राह्या तदाज्ञा त्वया ॥१२७॥

कुटुम्बियों की आज्ञा ।

भावार्थ—ऊपर कहे अनुसार शिष्य और गुरु का योग मिलने पर शिष्या का अधिकार प्राप्त होता है, किन्तु शिष्या होने के पहिले दीनेच्छु को कुटुम्बियों की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक है । यदि माता पिता स्त्री पुत्रादि कुटुम्ब के योग स्वाध्याय तथा मोहयश दाना में किसी प्रकार की रुकावट करते हों तो उनका निरस्कार नहीं करना चाहिये, किन्तु उन्हें कौम्य उपदेश के बचन में समझाना चाहिये, उनके मन में सन्तुष्ट कर के उनसे आशीर्षादि पूर्णक दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करना चाहिये ॥ १२७ ॥

आज्ञाया अभाव भावसंयम ।

नो शक्तो यदि गान्धन्यनरशो त्रेष परावर्त्तित्तु,
 स्थित्वाऽसौ निलयेऽपि पापविरतो वैराग्ययुक्तरतदा ।

स्वायायादिपरायणः कमलवन्निर्लिप्ताचित्तः सदा,
सतेवेत हि भावसयममल मुक्त्वा ममत्व हृद' ॥१२८॥

आज्ञा न मिलनेपर भावमयम ।

भारार्थ—वैराग्य रहते हुए भी कुटुम्बीजनों के गाढबन्धन से आना न मिलने पर यद्यपि वेप बढठ कर द्रव्यदीक्षा नहीं ले सक्ता है, ता भी समस्त पापों का त्याग कर वैराग्ययुक्त हो अपने घरम रहे, स्वायायादि शुभ कामों मे तीन रहकर जल्कमल की नाई सदा चित्त को निर्प रखे तथा हृदय से ममता को निकारकर भावसयम का सम्यक्प्रकार सेवन करता रहे ॥ १२८ ॥

तृतीय परिच्छेद

सत्तारत्याग ।

वैराग्यनिश्चयपूर्विका दीक्षा ।

यावज्जीवमनुत्तमेन मनसा वैराग्यभाव हृद,
निर्नक्ष्यामि पराक्रमेण सतत कस्मिन् प्रसङ्गेऽप्यहम् ।
इत्येव सति निश्चये हृदतरे त्यक्त्वा कुटुम्बं तृह,
गन्तव्य गुरुसन्निधौ मतिमता दीक्षा तृहीतु पराम् ॥१२०॥
वैराग्य का निश्चय हानेपर दीक्षा ।

भारार्थ—जिस मुमुक्षु को ऐसा हृद निश्चय हो जाये कि मेरे जीवनपर्यन्त वैराग्य के उच्च परिणाम रहेंगे तथा विकृत प्रसङ्ग

देशोऽग्राम पश्विल जगत्तनुभृत सर्वेऽपि कौटुम्बिका,
 * यत्र परिदर्शनाय जगता येष पराट्टयते ॥१३३॥

विमलिय धन का परिचयन ? ।

भावार्थ—ज्या जेन जे पहिले जो जानि कुटुम्ब परिमित जेस
 जामा जामाणि सेवक तथा सर्वाधर्यो के साथ ममत्व सम्बन्ध तथा
 जल सम्बन्ध जत तोड जिया है और ममत्व ससार को अपना देश
 तथा ममार जे प्राणिया को कुटुम्बी मान जिया है, ससार को य
 वान दिगाने जे जिये जाति और देशना जेप छोडकर साधुजा जेप
 धारण जिया जाता है ॥ १३३ ॥

चतुर्थ परिच्छेद

महाव्रत धारण और पापस्थान का परिहार ।

अहिंसा मत्स्य प्रतिज्ञा ।

जातेऽपि क्षुद्रया तथा परिभवे कुर्या न हिंसा मनाक,
 पट्टनायाऽङ्घ्रिषु मस्यचित्तनुभृत सङ्कल्पमात्रादपि ।
 कस्मिंश्चित् समयेऽपि दारुणतरे क्रोधेन लोभेन वा,
 हास्येनापि भयने वाऽवृत्तवचा दृशा न किञ्चित्स्वयम् ॥१३४

अहिंसा और मत्स्य की प्रतिज्ञा ।

भावार्थ—दीप्ता तेते समय निबोक्त प्रतिज्ञा की जानि है ।
 । मस्य स्थाम रोगाणि प्राणा त कर्मे वागे सङ्गरे जे आनेपर भी छद

काय के जीवों की हिंसा रचन और कायसे तो क्या ? सकल्पमात्र से भी नहीं करूंगा न करवाऊंगा और न करते हुए को अच्छा समझूंगा, इस को अहिंसा प्रतिज्ञा कहते हैं । भयकर समय आनेपर भी क्रोधसे लोभसे भयसे तथा हास्य से लेशमात्र असत्य न बोलूंगा, न बुलाऊंगा और न असत्य बोलनेवाले की अनुमोदना करूंगा, यह दूसरी सत्य प्रतिज्ञा है ॥ १३४ ॥

अस्तेय ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ।

तुच्छ वस्तु वृणादिक वरतर वस्त्रादिक मूल्यवद्,
गुह्याया न विनाऽऽज्ञया स्वचिदहो ! तत्रायकस्य स्फुटम् ।
मवेयापि न मैथुन त्रिकरणैर्द्विव्य च मानुष्यक,
सन्नद्धो नत्रभिश्च गुप्तिभिरहं दहावसानारथिम् ॥१३५॥

अचोर्य और ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ।

भारार्थ—वृणादि तुच्छ वस्तु हो चाहे वस्त्रादि बहुमूल्य वस्तु हो स्वामी की विना आज्ञा कभी न ग्रहण करूंगा, न करवाऊंगा और न करते हुए को अच्छा मानूंगा, इसी प्रकार देवसम्बन्धी मनुष्य-सम्बन्धी तथा त्रिवैच सम्बन्धी मैथुन का मरणपयन्त न सेवन करूंगा न करवाऊंगा और न सेवन करनेवाले का अनुमोदन करूंगा किन्तु ब्रह्मचर्यकी नागुप्ति अर्थात् नौ वाक्का सदा आगधन करूंगा ॥१३५॥

निष्पग्निग्रहप्रतिज्ञा ।

त्यक्त क्षेत्रगृह च रूप्यकनरु धान्य कुटुम्ब धन,

०९९, निष्पग्निग्रहश्च निग्विद्यो नेच्छेपमेन पुनः ।

अग्नि नहा करूंगा । ३ । माया सहित असत्यको तथा मिथ्यारूप
महाशून्यको जडमे उजाड दूंगा ॥ १३९ ॥

अष्टादशपापपरिहारप्रतिज्ञा ।

इत्यष्टादशसद्द्रव्यकानि कलुषस्थानान्यद् सर्वथा,

सेत्रेयापि न सेत्रयेय मनसा वाचा तथा कर्मणा ।

जानीया न वर निरीक्ष्य नितरा ससेवमान पर,

त्वत्साक्षेण गुरो ! कृपाऽमृतनिधे ! कुर्वे प्रतिज्ञामिमाम् ॥ १४०

अठारहपापवि त्यागकी प्रतिज्ञा ।

भाषार्थ—उपर बताये गये हिंसासे लेकर मिथ्या व पयन्त अ
उग्र पापोना में मनथा मन वचन और ज्ञायमे कदापि सेवन नहीं
करूंगा, दूसरेकी मेहन नहीं करवाऊंगा और दूसरेका सेवन करते हुए
देसकर भला नहीं मानुंगा । ह दयामृतके सागर गुप्तमहाराज ! आपका
साक्षीसे मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ इसको जीवनपयन्त पाऊंगा ॥ १४० ॥

पञ्चम परिच्छेद ॥

समितिप्रकरणे

सयमधीजोत्तम ।

उत्त हृद्भुति

प्रतिज्ञाय,

नो भवेत् ।

सयमबीजकी उत्पत्ति ।

भावार्थ—गुरु के समक्ष शिष्यकी की गई प्रतिज्ञा ही सयमका बीज है । इस निर्मल बीजको शिष्यने अपनी हृदय भूमिमें बोया है, यदि इसका जलसे सिंचन न कियाजावे तो यह ठीक समय पर अङ्कुर उपन्न नहीं करसकता, इसलिये गुरुकी दीगई शिक्षारूप जल सिंचन कर अन्यासरूप बयारीद्वारा इसकी सतत रक्षा करनी चाहिये जिससे यह बीज पत्ते डालियों आदिसे विस्तारवाला वृक्ष होकर शिष्यत मोक्षफलको उत्पन्न करसके ॥ १४१ ॥

गमनविधि ।

गन्तव्य न विना प्रयोजनमथो चारित्रिणा यत् क्वचित्,
स्वस्थाने निजयोगसाधनविधौ स्थेय त्रिधा गुप्तिभिः ।
आहारादिनिमित्तके तु गमने प्राप्ते समित्पाऽनया,
गच्छेन्निस्रदृशा धरा युगभिता सम्यग् निरीक्षयाग्रतः ॥ १४२ ॥

ईर्यासमिति—गमनविधि ।

भावार्थ—दीक्षा लेनेके बाद चारित्रधारी विना प्रयोजन कहीं-पर न जावे, अपने स्थानमें योगका साधन करता हुआ मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिका पालन करे, मन वचन कायका पापसे गोपन करे । यदि आहारादि निमित्त बाहर जाना पडे तो ईर्यासमिति का साधन करताहुआ नीची दृष्टि रखकर भागे चार हाथ भूमिमें देखता हुआ मार्गमें गमन करे ॥ १४२ ॥

ना ना ना नह अपन भागमें स वितरण करे । तपश्चात् अपना
भाग गम्स हा या नाम समभाव से आहार करे ॥ १५१ ॥

आहारायसद्ग्रह ।

याचन्मात्रमपक्षते मधुकरीवृक्ष्या रि तात्रन्मित,
अथ नरुगृहान्नेन गृहिणा न स्वायथा न्यूनता ।
रात्रो नाशनसद्ग्रह समुचित क्रोशद्वयाद्वाऽपर-
मार्नात् न च युज्यते सुयमिना यामत्रयातीतरम् ॥१५२॥

आहारादि का समग्र न करना ।

भावार्थ—मिश्र प्रकार के भोजन में जितना चाहिये उतना
ही आहार अनेक घरों में धूमकर मधुकरा वृत्ति से थोड़ा लेवे ।
जिस प्रकार मधुकर अथात् भौंरा अनेक पुष्पों से थोड़ा २ रस लेता
है किन्तु पुष्पों को कष्ट नहीं पहुँचाता ठीक इसी प्रकार सयमी अनेक
गृहस्थों के घर में थोड़ा आहार पानी लेवे । त्रिम से गृहस्थों को
कोई कष्ट न हो । दिन में लाया हुआ भिक्षा का अन्न दिनमें ही
समाप्त करदे रात्रि में वासी न रखे । दो कोश उपरान्त से लाये हुए
तथा तीन पहर बीतने के बाद का आहार को राम में न लवे ॥१५२॥

वस्त्रादिग्रहणविधि ।

वस्त्रादिग्रहणैषणाऽपि बहुशो रीत्याऽनेनया शोभना,
नेतेषागपि सञ्चय समुचित कालादिमानाधिः ।
स्त्रीपुसादिनिवामसद्ग्रहित स्थान मुनीना वर,
ग्रामे वा विपिने सुखासनकृते शोभय समित्या सता ॥१५३॥

यन्त्रादिक लेने की विधि ।

भावार्थ—भिक्षु आवश्यक वस्त्रादिक भी प्रायः पूराकृत रीति में दोष टाटकर एषणासमिति पूर्वक गृहस्थ से लें । मर्यादा से अधिक वस्त्रादि का संचय करना अनुचित है । मुनियों के ठहरने का स्थान गृहस्था के निवास और संग से अलग होना चाहिये वह स्थान गाँव में हो या वन में, स्वाध्याय ध्यानादि के लिये सुखकारी हो ऐसा योग्य स्थान मुनीश्वर एषणामिति से देख शोध लें ॥ १५३ ॥

स्थानेषणाविधि ।

स्थानस्याधिपतेर्जनस्य नितरामाज्ञा विनैरुक्षण,

स्थातु नोचितमात्मनिर्नाष्ठतत्रता स्थेथ नियोगे ततः ।

यस्याज्ञानिलयस्य तस्य किमपि ग्राह्यं न भोज्यादिकं,

स्थित्वा तत्र यथोचितं न ममता स्वल्पाऽपि कार्या सता ॥१५४॥

स्थान की षपणा विधि ।

भावार्थ—मकान के मालिक की आज्ञा बिना आ मज्ञानी मुनि को एक क्षण भी ठहरना उचित नहीं, उस की पूरी आज्ञा मिलनेपर ही ठहरना उचित है । जिस व्यक्ति से मकान में ठहरने की आज्ञा दी है उस को शाखों में शय्यातर कहा है । भिक्षु उस के घर का अन्न जल औषध आदि कुछ न ले । उस मकान में उचितकाल तक ठहरे, किन्तु उस में लेशमात्र भी ममत्त परिणाम न करे, अर्थात् प्रीति न करे ॥१५४॥

वस्त्राग्र निग्विल निजोपकरण स्कन्धादिनोद्ग्रा स्वय,
पादेनैव रर विहारकरण सन् वासिना श्रेयसे ॥१५९॥

साधुओं का पैदल विहार ।

भावार्थ—साधु कैंट घोटा गाडी आदि सारी पर नहीं बैठे ।
तथा पिना कारण नात्र पात्र्नी आदि पर भी न चढे । वस्त्र पात्रादि
अपना सपूर्ण उपकरण मजूर आदि मे नहीं उठावें, अपने कंधेपर
उठाकर पदल विहार करें । यह वृत्ति साधुओं के लिये कन्यागकारी
हे ॥ १५९ ॥

वस्त्रापादाननिक्षेपविधि ।

वस्त्रादेर्न च यत्र तत्र धरण किन्तु व्यवस्थापुरो,
न्यासो योग्यपदे सदा यतनयाऽऽदान पुन कारणे ।
तत्सर्वं घटते पिना न यमिना सम्गार्जिन वीक्षण,
तद्ग्राह्य न्यमनीयमत्र सकल सम्मार्ज्यं दृष्ट्वा तथा ॥१६०॥

वस्त्रपात्रादि के उठान रखने की विधि ।

भावार्थ—मुनि अपने वस्त्रादि उपकरण जहा रहीं न धर,
किन्तु व्यवस्थापूर्वक यतना से योग्य स्थान पर धरें और काम पडने
पर यतना से उठावें । मुनियों को सब काम पिना देखे पिना झाटे
करना अयुक्त है, अत एव सब वस्तुओं को देखकर और माजनी से
थाडकर धरना उठाना चाहिये ॥१६०॥

वस्त्रादिप्रतिलेखनक्रिया ।

उद्युक्तो दिवसे सदा नियमत प्रातश्च साय यमी,
वस्त्रादे प्रतिलेखन विधियुत कुर्याच्च मूक्षभेक्षया ।

स्थादेव यमरक्षण न च भवेत् सूक्ष्माङ्गिना हिंसन,
नाप्यालस्यनिपेयण निजतनो रक्षाऽलिसर्पादितः ॥१६१॥

बद्धादि के प्रतिलेसन की क्रिया ।

भावार्थ—दिन में दो बार प्रातःकाल और सायंकाल समयी उद्यमशील होकर विधिपूर्वक सूक्ष्मदृष्टि में बद्धादि का प्रतिलेसन कर । ऐसा करने से बद्धादि पर चढ़े हुए छोटे छोटे जंतुओं की रक्षा होती है, अतः अरिंसा समय दृढ होता है अन्यथा जीवों की हिंसा होने से समय का घात होना निश्चित है । तथा आलस्य दूर होता है, इतना ही नहीं बकि सर्प विन्धू आदि निपेडे जंतुओं से अपने शरीर की रक्षा भी होती है ॥ १६१ ॥

पट्टादी शयनाशनम् ।

पल्पङ्के शयनासनादियमिना नैव क्वचिद् युज्यते,
नो येनासनमञ्चिन्नादिषु पुनर्नैवापि खट्वादिके ।
पट्टे काष्ठमयेऽथवा क्षितितले दर्भादिसस्तारके,
सा मूना शयनासन समुचित हन्तु प्रमादादिकम् ॥१६२॥

भूमि या पट्टे पर शयन ।

भावार्थ—सयमी पट्ट खराट आरामपुरसी मच जादि पर सोना बैठना न करें, किन्तु काट के पट्टे पर भूमिपर या दर्भ घाम आदि बिद्धाकर सोने, बैठ, क्यों कि ऐसा करने से निद्रा तन्द्रा आलस्यादि दूर होते हैं ॥१६२॥

परिष्ठापनाविधि ।

त्याज्य यत्र मलादिकं तदापि वा स्थान निरीक्ष्य पुरा,
 सच्छिद्रं न जनाकुलं न यदि तन्निम्नं न वा नोन्नतम् ।
 नो मार्गो न च देवताधिवसनं नो सूक्ष्मजन्त्वाचितं,
 कार्यस्तत्र मलादिकस्य मुनिना त्यागं समित्या सदा ॥ १६३ ॥
 मलमूत्रादि त्यागनेकी विधि ।

भावार्थ—साधुओं को जिस जगह मलमूत्रादि का त्याग करना हो उसे पढ़ते देव शोध लेना चाहिये । जिस स्थानमें चींटी चूँ आदि के बिठ न हों, न मनुष्या का अधिक जानाना हो । जो स्थान न बहुत नीचा हो और न बहुत ऊँचा हो, न मार्ग हो न देवताओं का निवासस्थान हो, तथा सूक्ष्म जन्तुओं से व्याप्त न हो । ऐसे स्थान में मुनियों को यत्नपूर्वक मलमूत्रादि का त्याग करना चाहिये ॥ १६३ ॥

पष्टपरिच्छेदः ।

परिपहविजयः ।

क्षुधादिपरिपह ।

भिक्षाया न च लभ्यतेऽन्नजलं शुद्धं कदाचित् क्वचिद्,
 दैन्यं नात्र तृप क्षुधं परिपहो जेयस्तपोभावतः ।

ग्रीष्मे वा शिशिरे भवेत्परिपहस्तापस्य शीतस्य वा,
शौर्येणैव पराजय किल तयोः कार्यो बलादात्मनः॥१६४॥

क्षुधाभादि परिपह ।

भावार्थ—साधु को भिक्षा के समय कदाचित् निद्राप जत्र जल न मिठे और मूत्र प्यास की बाधा भी सताती हो उस समय साधु-दीनता न दिखावे, किन्तु इसे कर्मों निजरा करनेवाली तपस्या समझ क्षुधा तृषा का परिपह पर पराजय प्राप्त करे । इसी प्रकार श्रीमन्तु में गर्भा का और शरदऋतु में ठंड का परिपह प्राप्त होनेपर शूत्रामे तथा आमबल से इनपर विजय प्राप्त कर ॥ १६४ ॥

मशकादिपरिपह ।

क्वापि स्युर्मशकादयस्तदपि नो ग्लानिः सता शोभते,
नो दैन्य वसनाग्रलम्भजनित कष्टेऽपि नैवारति* ।
नो स्त्रीभिश्चलन श्रमेण पथि नो रिप्रेत चित्तं कदा,
स्थिन्यैकाऽऽसनतश्चिरेण मनसो धैर्यं न मुञ्चेन्मनाम् ॥१६५॥

मच्छर आदिका परिपह ।

भावार्थ—किसी जगह टॉम मच्छर आदि का उपद्रव होता हो तो भी मुनिमो इससे रोदखिन नहीं होना चाहिये, क्योंकि ऐसी कायरता आत्मबली सत्पुरुषों को शोभा नहीं देती । किसी समय बख्खादि की प्राप्ति न होनेपर साधु दीनता न दिखावे तथा कष्ट आनेपर खेद न करे । एकांत में छीसे परिचय होनेपर भी चञ्चलमान न हों ।

मार्ग में पैदल चलनेमें थकावट होनेपर चित्त में कभी गेद न मानें । स्वाभाविक ध्यान आदि के लिये बहुत कातर एक जगत् बैठे रहना पड़ता है, इससे घबराकर जरा भी धैर्य को न छोड़ किन्तु शरीरतामि उक्त परिपत्रों पर नियम प्राप्त करें ॥ १६५ ॥

शय्यादिपरिपत्र ।

नो प्राप्ता वसति शुभा तदापि नो चित्ते विपादोदय ,
 श्रत्वाऽऽक्रोशश्चोऽपि नैव सहसा शान्तो मुनि कुप्यति ।
 नो द्विष्टे वधवन्त्रनेऽपि न तथा भिक्षाटने लज्जते,
 नालाभे न गदोदये निजतनोश्चिन्ता विधत्ते पुनः ॥१६६॥

शय्या आदिकी परिपत्र ।

भार्याथ—माधु विहार करता हुआ किसी गौरमें पहुँचे और वहापर ठहरने को सुभीत का स्थान न मिलनेपर वृथके नीचे ठहरना पड़े तौ भी साधु अपने चित्त में लेश मात्र विपाद न करे । कोट शत्रु मनमाने कठोर वचन बोले तथाऽपि शातमुनि सहसा कोप न करे क्षमा वाग्ण करे । कोद दुष्ट मनुष्य लाठी जादिसे मारने गे या रस्सी से बाँध दे तौ भी मुनि द्वेष न करे अपने कार्यम लगा रहे । अपनी जाति या कुलमा अभिमान कर गृहस्थ के यहा भिक्षा के लिये जाने में लज्जा न करे । किसी समय किसी उम्तु के नहीं मिलने पर या शरीर में रोग प्रकट होवानेपर हाथ ' अब मेरा क्या होगा ' में क्या करूँ ' ऐसी चिन्ता न करे किन्तु शु या आमन आदि परिपत्रों को सहन करे ॥ १६६ ॥

तृणस्पशादिपरिषद ।

दर्भादौ शयनेऽपि सयमिमुनिः कुर्यान्न खेदं मनाद्,
 नो ग्लानिं मलिनाम्बरादिभिरथो गर्वं न सत्कारत* ।
 औरकट्टपैऽपि मतेर्न मायति तथा मान्पेऽपि नो खिद्यति,
 मिः प्राऽऽडम्प्रस्तो न मुद्यति पुनर्जित्वा रिपूनान्तरान् ॥ १६७ ॥

तृणस्पशादि परिषद ।

भावार्थ—शरीरमें चुभनेवागी टाभ आदि की शय्या पर मोनेसे सयमी मुनि किचिन मात्र खेद न करे । अपने बख तथा शरीर को मलिन देखकर मनमें ग्लान न करे । दूसरा मे अपना बहुत आदर सम्मान होते हुए तेगकर पेशमात्र गर्व न करे । यदि बुद्धि तीक्ष्ण हो तो पूरे नहीं, तथा बुद्धि मट होनेपर शोक न करे । दूसरे लोगों के मिथ्या आटम्बसे मोहित न हो किन्तु रागादि अन्तरङ्ग शत्रुओं को जानकर सयम में स्थिर रहे ॥ १६७ ॥

सप्तमपरिच्छेदः ।

शावूना दिनवृत्त्यम् ।

शेषे ज गरण निशोऽन्त्यचरणे स्वाध्याय आचरणक,
 स्वा प्रायः प्रतिलेखन च यमिना यामे दिनस्यादिमे ।

ध्यान यामप्रित ततो मधुकरी यामे तृतीये पुन-

स्तुर्येऽपि प्रतिलेखन च पठन माय दिनाऽश्वयम् ॥१६८॥

साधुओं की दिनचर्या ।

भावार्थ—साधु रात्रि का एक पहर बाकी रहे तब उठे और उस समय स्वा याय तथा रात्रिका प्रतिक्रमण करे । इस के बाद दिन के पहले पहर में प्रतिलेखन तथा स्वा याय करे । दिन के दूसरे पहर में एक पहर तक ध्यान धरे । तीसरे पहरमें मधुकरी वृत्ति से भिक्षा आहारानि करे । चौथे पहरमें पठे तथा प्रतिलेखन करे । और साय का दिन का आवश्यक प्रतिक्रमण करे ॥ १६८ ॥

व्यर्थसमयाभाव ।

स्वा याय* क्षणदैन्याममनघ ध्यान निशीथावधि,
निद्रैक महः ततो विधिरय सन्न्यासिना नैत्वक* ।

स्यादेतत्क्रमपालन यदि तदा कालोऽवशिष्येत नो,
साधूना विरूथा-प्रलाप-कलहा-सूया-वितण्डा कृते ॥१६९॥

समय व्यर्थ न खोना ।

भावार्थ—सायकाका प्रतिक्रमण करने पर साधु रात्रिका पहला पहर स्वाध्यायमें और दूसरा पहर निर्मल ध्यानमें बिताये । इस प्रकार मयरात्रि बीतवाने पर एक पहर तक निद्रा ले । साधुओं का यह नित्यकर्म है । यदि उक्त प्रकार कृतव्यय पावन क्रियानावे तो

* पठना स्वाध्यायमें गर्भिते है ।

साधुओंको कुरुधा, व्यर्थ भाषण, कलह, ईर्ष्या तथा त्रिण्डात्नाद करनेका विलकुल अग्रकाश नहीं मिलसकता, अत एव समयका पूरा पूरा सदुपयोग करना चाहिये ॥ १६९ ॥

प्रमादविजयार्थ समयमर्यादा ।

यावत्पञ्चविधप्रमादविजयो न स्याद्गुणारोहण,

तावन्नैव मुनेस्ततः प्रतिदिन रन्ध्यात्प्रमादाश्रयम् ।

तद्रोधाय तडागसेतुसदृशी वद्धा जिनेन्द्रैरिय,

मर्यादा समयस्य रात्रिदिनयो रक्षया च सा सर्वदा ॥१७०॥

प्रमादपर विजय पानेके लिये समयकी मर्यादा ।

भावार्थ—जबतक मत् विषयकपाय निद्रा और विक्रिया इस तरह पाच प्रकारके प्रमाद पर विजय प्राप्त न हो तबतक गुणस्थान की ऊपरकी श्रेणीपर चढ नहीं सकते, अत साधु प्रमाद आश्रयको रोकनेके लिये पानी को रोकनेवाली तागवकी पाठ के समान जिनेन्द्र भगवान्ने उपरोक्त समयकी मर्यादा रार्धी है, उस मर्यादाका मुनि भन्ने प्रकार पालन करें ॥ १७० ॥

कालममोलङ्घनेऽपि कालमानस्यनोलङ्घनम् ।

देशाचारविशेषतो मधुकरी काले यदि व्यत्यय—

स्तत्रापि प्रहरद्वय तनुकृते निद्राशनादिक्रिया ।

ध्यानार्थ परिपूर्णयामयुगल स्वाभायससिद्धये,

रक्षय यामचतुष्टय मुनिपरैर्नो कालमानोत्क्रम ॥१७१॥

एव शास्त्रविदग्रणीर्गुणमणि स्यात्पाठकोऽप्येकको-

नाचार्येण च पाठकेन रहितो गन्त्रो भवेत्त्रोभनः ॥१७४॥

आचार्य और उपाध्याय ।

भावार्थ—गद्य के साधुआसी रक्षार्थे लिये जिसमें सबसे उत्तम साधुके गुण पाये जावें, तथा जो शास्त्रके रहस्य को जाननेवाग हो, सम्पूर्ण सध मित्रर उस प्रभावशाली मुनिकी सधने नायकपद पर स्थापन करे अर्थात् आचार्य बनाने । इसी प्रकार जो शास्त्रके ज्ञानार्थों में अग्रसर हो, तथा समता भाव आदि अनेक गुणोंमें भूषित हो, ऐसे एक उत्तम साधुको उपाध्याय-पद पर नियुक्त करे । क्योंकि आचार्य और उपाध्यायके विना गच्छ शोभा नहीं पाता ॥ १७४ ॥

आचार्यपदयोग्यता ।

सर्वेषां हितसाधने समदृशा शक्तिर्यादि स्यात्परा,

सम्पत्स्यात्सङ्गलाऽपि शास्त्रविहिताचार्यस्य योग्योदिता ।

ग्राह्य सूरिपद् समुन्नततर तेनैव मेधाविना,

नोचेदत्तमपि स्वयं हितप्रिया त्पाज्य विलम्ब विना ॥१७५॥

आचार्यपदकी योग्यता ।

भावार्थ—साधु साध्वी श्रावक और श्राविका इस चार प्रकार के सधनों समान दृष्टिसे देखनेकी तथा सबका समान हित करनेकी जिसमें पूर्ण शक्ति हो, तथा दशानुतस्वन्धमें कहीगई आचार्य के योग्य समस्त प्रकारकी शक्ति विद्यमान हो, उसी प्रतिभाशाली पुरुष

को सर्वोच्च आचार्यपद ग्रहण करना चाहिये। यदि ऐसी योग्यता न हो तो सघद्वारा लिया हुआ आचार्य पद भी समाजके हितके लिये विना विलम्ब के स्वयं छोड़ देना चाहिये ॥ १७५ ॥

आचार्यकर्तव्यम् ।

गच्छाचारसुपालन स्वयमल गच्छव्यवस्थापन,

भारिक्लेशनिदान प्रीजदहन ज्ञानक्रियोद्धारणम् ।

धर्मोत्साहविवर्द्धन जगति सद्गर्मस्य सञ्चारणं,

सङ्घे स्वास्वयसमाधिसाम्यजनन कृत्य हि मूरोरिदम् ॥१७६॥

आचार्यका कर्तव्य ।

भावार्थ—आचार्य स्वयं शस्त्रमें कहे हुए आचरणको पालन करे, और अपने गच्छके साधु साधियोंसे भी निर्दाय आचरण पालन करावे। तथा गच्छकी पूर्ण व्यवस्था करे। भारिव्यमें होने वाले क्लेशके चिह्न मात्रम होने लगे तो तका उसके मूल कारणको मिटा दे। ज्ञान और क्रियाकी पूर्ण वृद्धि करे। समाजमें धार्मिक उत्साह बढ़ावे। तथा समाजके चारों ओरों में धर्मका प्रचार करे। सघमें स्वास्थ्य शान्ति तथा समभावकी प्रवृत्ति करे। यह सब आचार्यका कर्तव्य है ॥१७६॥

उपाध्यायकर्तव्यम् ।

पाठ्याः पुत्रदृशा सदैव मुनय सर्वेऽपि त्रिप्राथिनो,

नो चौर्यं न च पक्षपातकरणं तत्प्रार्थपाठे कदा ।

सन्तुल्या पठनाईशास्त्ररचना कार्या पुनर्नव्ययो—

पाध्यायेन विचक्षणैः समये स्वीये परस्मिन्स्तथा ॥१७७॥

प्रायश्चित्त ।

भावार्थ—मूलगुण तथा उत्तमगुण में दोष या बड़ा कोई दोष
 आता हो तो साधु तत्काल गुरुके निकट जाकर अपने लगे हुए दोषों
 का आराधना करे । गुरु ने सम्मुख दोषों को साफ साफ कहे । दोष
 को गृही ने गिने गुरुमहाराज क्षेपण अथवा और कोई प्रायश्चित्त दे
 ता । उसको प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र पावन करे इसे प्रायश्चित्त तप करते
 हैं, यह आभ्यन्तर तपसा पत्र भेद है ॥ १८३ ॥

विनय

॥१८३॥

मूल धर्मतरो विलासिन विनयः सप्तप्रकारो मतः,
 सेव्य सर्वविधोऽपि दर्शनगतो भेदो विशेषेण च ।

उत्थानासनदानचन्दननमस्कारैश्च भक्त्यादिभिः—

गुर्विदौ विनय क्रियेत मुनिभिस्त्वयत्वाऽखिलाऽऽशातना

॥ १८४ ॥

विनय ।

भावार्थ—धमरूपी वृत्तका मूल विनय है उसके सात भेद हैं,
 ये सब पावन करने योग्य हैं, ती भी इनमें दर्शन नामका भेद विशेष
 आदरणीय है । गुनीश्वर सम्पूर्ण आशातना से टाकर गुरु आदि
 बड़े पुरुषोंको आनेहुए न्ये भक्तिपूर्वक खटे होना, ऊचा आमन लेना,
 चन्दना ओर नमस्कार करना इत्यादि सत्कारद्वारा उनका भक्तिपूर्वक
 विनय करे ॥ १८४ ॥

वेयात्रत्यम् ।

भिक्षाग्रानयनेन भारवहनोपाङ्गादिसम्प्राधनै-

वेयात्रत्यतपस्तपस्विभिरल कार्यं श्रुतज्ञानिनाम् ।

एव ज्ञानिभिरप्यभीष्टतपसा ग्लानत्वरोगोद्भवे,

भेषज्यानयनादिसाधनभैरः सेव्यास्तपोधारिणः ॥ १८५ ॥

वेयात्रत्य ।

भावार्थ—तपस्वी साधु, श्रुतपरायण विद्वान् मुनियों को भिक्षा आदि लाकर देव, विहार में उनका बोझा उठा दें, उनके हाथ पाव दवावें, इत्यादि अनेक प्रकार सेवा भक्ति कर के वेयात्रत्य नाम के तीसरे आभ्यन्तर तप का सेवन करें । इसी तरह ज्ञानी मुनीश्वर भी तपस्वियों की ग्लान अवस्था में तथा रोग प्रकट होनेपर ओषध पथ्य भोजन आदि सावनोंद्वारा पूर्ण सेवा करके वेयात्रत्य तप का पात्रन करें ॥ १८५ ॥

दशमपरिच्छेदः ।

स्थाध्यायप्रकाश ।

शास्त्राणां क्लिप्त वाचनं च मननं तद्वन्निदिभ्यासनं,

स्मृत्यर्थं पठनं रहस्यसहितं तात्पर्यसशोधनम् ।

शङ्काया गुरुसन्निधौ सविनयं पृष्ठा तदुच्छेदनं,

मापाज्ञानपुरस्तरं विनायिना स्वार्थं विना पाठनम् ॥ १८६ ॥

उदे प्राणगतेर्मनोगतिरपि च्छिन्नैव तस्या पुन-
विच्छेदे विषयं सहेन्द्रियगतिर्नष्टैव सिद्धिस्तत ॥१९३॥

प्राण और मनका सम्बन्ध ।

भावार्थ—जन्तु प्राणायुर्गो गति नियमित नहीं होती है, तब तब मनभी स्थिर नहीं होता है। क्योंकि मन और प्राणायुर्गो दूधपानी की तरह घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये प्राणकी गति रुकजाने पर मनकी गतिभी रुकजाती है। आर मनकी गति रुकजानेपर विषयोंमें इन्द्रियकी प्रवृत्ति हट जाती है। विषयासे इन्द्रियकी प्रवृत्ति के हट जानेपर सब्ज ही ध्यानकी सिद्धि होती है ॥ १९३ ॥

प्राणायाम ।

प्राणायाम उपाय एक उदितो ध्यानस्य ससिद्धये,
श्वासोच्छ्वासगतिच्छिन्नात्मकतया स्यात् पुन स त्रिधा ।
वायु क्लोष्ठगतोऽतिमन्दगतितो निःसार्यते यद्गृह्णति,
सोऽथ रेचकनामज्ञो निगदितो भेदस्तदीयोऽग्रिम ॥१९४॥

प्राणायामका पहला भेद—रेचक ।

भावार्थ—ध्यानकी सिद्धिके लिये प्राणायाम एक मुख्य उपाय बताया है। श्वासोच्छ्वासकी गतिना रुकनाही प्राणायाम है। कौठे के अन्दर गये हुए वायुका अतिमन्दगतिमें धीरे धीरे बाहर निकालना रेचक नामका प्राणायामका पहला भेद है ॥ १९४ ॥

पूरककुम्भको ।

प्राणाद्वादशकाहुलस्थपवन त्वाकृष्य यत्पूर्यते,

कोष्ठे पूरकनामकः स मुनिभिर्भेदो द्वितीयो यत ।

नामात्रेव स पूर्यमाणपवनो यत्नेन यद् यते,

सोऽय कुम्भकनामकः सुविदितो भेदस्तृतीयः पुन ॥१९६॥

पूरक और कुम्भक ।

भावार्थ—नासिकासे बाग्ह जगुल दूर पर रहनेवाली बाहरकी वायु सेंचकर जो कोष्ठमें भरी जाती है, उसे मुनियोंने पूरक नामका प्राणायाम का दूसरा भेद कहा है। तथा कोष्ठमें भरीहुई वायु को यत्नेन पूरक नामके रोक रखना कुम्भकनामका प्राणायामका तीसरा भेद बनाया है ॥ १९४ ॥

प्राणायामफलम् ।

प्राणापानसमानरूपभृतयः पञ्चानिला देहगा,

स्तत्स्थानादिक्रोधनेन मुनिना कार्यः शुभस्तज्जय ।

स्यात्प्राणादिजये शरीरमखिल नीरोगमभ्यासतो-

हृत्पत्र विकसेच सत्वरमल साया भयेदारणा ॥१९६॥

प्राणायामका फल ।

भावार्थ—प्राण अपान समान उदान और व्यान ये पांच वायु शरीरमें होते हैं। इनका स्थान और स्वरूप जानकर मुनीश्वर उनपर विजय प्राप्त करें। क्योंकि प्राणादि वायुपर विजय प्राप्त

नीरोग जाता है तथा अभ्यास परत करते हृदयकमल विकसित होकर
धारणा शक्तिकी शीघ्र पूर्ण—शुद्धि होती है ॥ १५६ ॥

भायप्राणायाम ।

वायुमार्णावेशाधन न सफुल्ल स्यात्सर्वथा योगिना—

मत्रास्ति क्षतिसम्भवोऽपि न ततोऽस्याऽत्यादर शोभन ।
तच्च्युत्तवा रहिरात्मभावमखिल भार निपूर्यन्तर,
स्यात्तव्य परमात्मभावनित्वरे ध्यानाद्भवेत्तद्रम ॥१०७॥

भाय प्राणायाम ।

भावार्थ—द्रव्य—प्राणायामसे शरीरादि वायुप्राणकी शुद्धि होकर
रोगादि की निवृत्ति तो होती है, लेकिन आम्यानी योगियोंको इसे
पूर्ण सफुल्लता नहीं समझनी चाहिये, तथा द्रव्य—प्राणायामकी विधिमें
थोड़ीसी च्युनाधिकता होनेपर हानिकी सम्भावना भी रहती है। इस
विषये इसका अति आदर करना योग्य नहीं। किंतु भायप्राणायामका
स्वरूप समझकर उसका आदर करना योग्य है। भायप्राणायाम में
बहिरामभावको रोककर अंतरामभावको पुरुष
कुम्भक करना चाहिये। यह भाय प्राणायामकी
है ॥ १९७ ॥

यावदावति चलेति

स्याच्चित्त मलिन च

अनावश्यक इन्द्रियार्थविजयश्चित्त विधातु स्थिर,
प्रत्याहार उदाहृतोऽयममलो योगस्य सत्साधनम् ॥१९८॥

प्रत्याहार ।

भावार्थ—जनतक चचट इन्द्रिया बाहरके शब्दादि विषयों की तरफ दौटा करती है । तनतक चित्त मट्टिन होकर उनके पीछे पीछे बाहर भटका करता है । ऐसी अवस्थामें ध्यानकी सिद्धि होना असभव है । इसलिए मनको स्थिर करने के लिये विषयोंकी तरफ दौटती हुई इन्द्रिया की अपने वशमें करना चाहिये, इस को प्रत्याहार कहते हैं । प्रत्याहार योगका दोषरहित उत्तम साधन है ॥ १९८ ॥

धारणा ।

नासाग्र हृदय मुख च नयन नाभिश्च भाल श्रुति-
स्तालु भ्रू रसना च मस्तकमिति स्थानानि योगस्य वै ।
एषामन्यतमे स्थलेऽभ्यासनतश्चित्तस्य यद्व्यन-
मेतलक्षणधारणाऽपि सतत सा या समाध्यधिभि ॥१९९॥

धारणा ।

भावार्थ—नामिका का अग्रभाग हृदय, मुख, नेत्र, नाभि, ललाट, मन, तालु, भौ, जीभ, और मस्तक ये ग्यारह स्थान अथवा धारणाके स्थान हैं । इनमसे किसीएक स्थानपर अभ्यासके बलसे चित्तको स्थिरकरना ही धारणा है । समाधिके उच्छुओं को निरन्तर अभ्यास कर उक्त धारणाकी सिद्धि करनी चाहिये ॥ १९९ ॥

जातेऽस्मिन् घनघातिकर्मरिह* ससारनाशस्ततो—

व्युत्सर्गे पणिनिष्ठिते च सरुले सर्वे हि निष्ठा गतम् ॥२२३॥

भाष्यव्युत्सर्गं तप ।

भावार्थ—भाष्यव्युत्सर्गं तप भी ससार कषय और कर्मके भेदसे तीन प्रकार का है । इनमें से पहले पहले क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर कषय का क्षय करना चाहिये । कषय का क्षय होनेपर चार घातीकर्म का नाश होता है और कर्म का नाश होते ही ससारना भी नाश हो जाता है । इसलिये व्युत्सर्ग-तप की सिद्धि को सत्य कार्य की सिद्धि समझनी चाहिये ॥ २२३ ॥

ध्यानतपसो- फलैक्यम् ।

ध्यान यानिजनस्य पारुसमये दत्ते शुभ यत्फलं,

दद्यादत्र फल तदेव शमिन पन्था तपस्या ध्रुवम् ।

मध्ये यद्यपि भाति साधनविधौ भेद इत्यश्रित्तयो-

निष्ठाया तु तयो* फलैक्यकलनाच्चास्त्येव भेदो मनाः ॥२२४॥

ध्यान और तप के फल की एकता ।

भावार्थ—ध्यान करनेवाले महामाओं को परिपाक के समय ध्यान जो शुभ फल देता है वही फल शान्तिपरायण तपस्वियों को परिपाक हुआ तपस्या भी देता है । यद्यपि मध्य में साधन के भेद से उन दोनों में किसी प्रकार भेद मादम होता है तथापि पणिनाम में एक ही फल प्रतीत होता है इसलिये इन दोनों में कुछ भेद नहीं है । ज्ञानाभ्यासियों को स्वाध्याय तथा ध्यान में समय व्यतीत करना चाहिये और तपस्वियों को तपस्या में का

ग्रन्थकारप्रशस्ति ।

गच्छे स्वाम्यजरामरो दिनमणिर्लोकाभिधे विश्रुत-
 स्तपट्टे मुनिदेवराजविद्युः श्रीमौनसिंहस्ततः ।
 सूरिर्देवजिदाह्वयः श्रुतधर पट्टे तदीयेऽभवत्,
 स्वामिश्रीनयुजिद्रणी गुणखनिः शिष्यस्तदीयः पुनः॥२२५॥

प्रायात् स्वामिगुलाचन्द्रविद्युः श्रीवीरचन्द्राग्रज-
 स्तच्छिष्येण तु रत्नचन्द्रमुनिना कर्तव्यमार्गावहः ।
 ग्रथोऽयं ख गजा-ऽङ्क-भू-परिमिते वर्षे शरत्पूर्णिमा-
 सौम्यादि प्रथितोऽथ राजनगरे पूर्णांकृतः श्रेयसे॥२२६॥युगम्

ग्रन्थकारप्रशस्ति ।

भासाथ—लाकागच्छ के लीबटी—स प्रदाय म नृत्य के समान
 प्रसिद्ध पू० श्रीअजरामरजी स्वामी हुए । उनके पट्टपर पू० पटितश्री
 देवराजजी स्वामी और इनके बाद पू० श्री मोनसिंहजी स्वामी उनके पट्टपर
 निराजमान हुए । इन के पट्टपर शाखमें निपुण पू० श्री देवजीस्वामी,
 तपश्चात् इन के शिष्य गुणगणभटित पू० श्री नत्थूजीस्वामी हुए ।
 उन के प्रायात्—शिष्य पटित—श्रीगुलाचन्द्रजीस्वामी और इन के शिष्य
 आता महाराज श्रीवीरजीस्वामी अभी विद्यमान हैं । पतित्रयमुद्र-
 चन्द्रजीस्वामी के शिष्य पटित मुनिश्री—रत्नचन्द्रजीने कर्तव्य मार्ग के
 दिखानेवाया यह कर्तव्य—कोमुनी नामके द्वितीय ग्रन्थ का द्वितीय
 खण्ड विक्रम सवत् १९८० की आश्विन शुद्ध-पूर्णिमा बुधवारके दिन
 देश में प्रसिद्ध राजनगर अणनाम अहमदाबाद नगर में

प्रिश्च	मसार
त्रियावृत्त्य	सेवा
वेगम्यवद्धक	वेगम्य धटानेवाला
व्यवस्था	प्रबन्ध, इन्तिजाम
व्याधि	शरीरपीडा
शस्त्र	जो हथियार पकडकर माराजाता है, जैसे तलवार दुगी आदि
शास्त्रवेत्ता	शास्त्राका ज्ञाता
श्रमजीवी	मजूर
सतत	सदा
समभाव	समानपरिणाम, रागद्वेषका अभाव
समभावजनित	समभावसे उत्पन्न हुआ
सहृदय	उदार
सक्रमण	परिवर्तन, बदलना
सतप्त	संतापयुक्त, दग्ध
सम्पादन	प्राप्त
ससर्ग	परिचय, सम्बन्ध
सहार	नाश
साधन	पालन निद्रि
सापव	सदाप
स्वन्ध	पेडका धड
स्मरण	याद
स्वचक्र	निजसेना
स्वदार-मत्तोप-वृत्ति	अपनी स्त्रीमेंही मत्तोप
हृदयविदारक	हृदयको उदनेवाला
हस्तावलम्बन	हाथका,

त्रिभुव	समार
घयावृय	मेया
येराग्यवद्वक	येराग्य श्वदानेवाला
व्यवस्था	प्रवन्ध, इतिजाम
व्याधि	शरीरपीडा
शस्त्र	जो हथियार पकडकर माराजाता है, जैसे तलवार दुरी आदि
शास्त्रवत्ता	शास्त्रोंका ज्ञाता
श्रमजीवी	मजूर
सतत	सदा
समभाव	समानपरिणाम, रागद्वेषका अभाव,
समभावजनित	समभावसे उ पन्न हुआ
सहृदय	उदार
सममण	परिवर्तन, बदलना
सतत	संतापयुक्त, दुग्ध
सम्पादन	प्राप्त
समर्ग	परिचय, सम्बन्ध
सहार	नाश
साधन	पालन मिद्धि
सापथ	सदोष
स्वन्ध	पडका धड
स्मरण	याद
स्यचम	निजसेना
स्यदार-सन्ताप-वृत्ति	अपनी स्त्रीमेंही सन्ताप ५
हृदयविदारक	हृदयको छेदनवाला
हस्तापलभ्यन	५।

